"हमारे अंदर अज्ञान से जमे हिमखंड को
तोड़ने के लिए पुस्तक एक कुठार है।" -काफ्का

समीक्षा,संवाद और सूचनाओं की

साहित्य नंदिनी

वर्ष–07, अंक–01, जनवरी 2025 www.abhinavimroz.com RNI No. DELHIN/2017/74713/19-02-18

श्री अजित कुमार राय समीक्षा विशेषांक

हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयागराज में नरेश मेहता की रचनाधर्मिता पर अध्यक्षीय भाषण देते हुए, साथ में हैं... 'सरस्वती' के संपादक श्री रविनंदन सिंह, सचिव और दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध प्रोफेसर सत्यप्रिय पाण्डेय।

परिवार के साथ एक वैवाहिक कार्यक्रम में...

पंकज चतुर्वेदी के साथ

कालेज प्रतियोगिता में विजेता छात्रा को प्रमाण पत्र देते हुए...

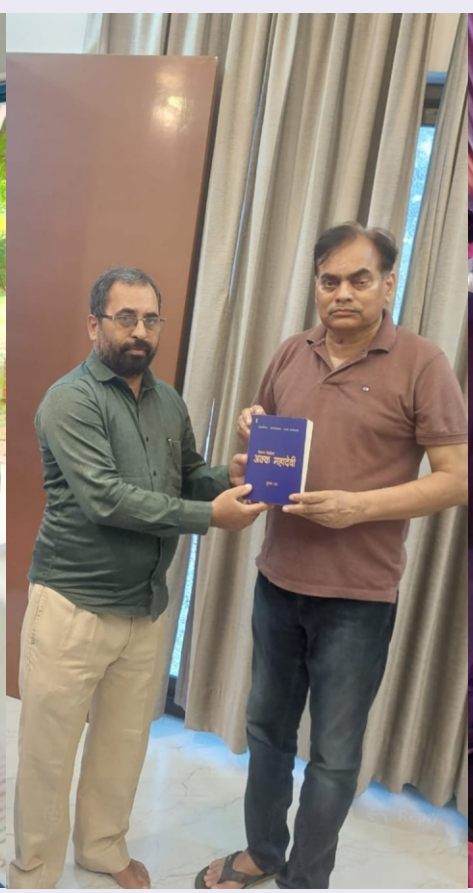

जनसंदेश टाइम्स के प्रधान संपादक श्री सुभाष राय जी को पुस्तक भेंट करते हुए।

हरि ओम पवार के साथ

संपर्क : संपादक : देवेन्द्र कुमार बहल, बी-3/3223, वसंतकुंज, नई दिल्ली 110070
मो. 9910497972 / 8527697972, ई-मेल : abhinavimroz@gmail.com

समीक्षा

कृष्ण : जीवन और चिंतन के बृहत्तम आयामों की अवतारणा

अजित कुमार राय

'राम और कृष्ण भारतीय मानसिकता के 'अक्षांश' और 'देशांतर' हैं । राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और श्रीकृष्ण सर्वमान्य लीलापुरुष । कृष्ण की कल्पना में चरित्र और 'मिथक' का योग है; यह संधि है 'गोपाल' और 'पार्थ सारथी' की । कृष्ण जातीय जीवन के महानतम मिथक हैं। श्रीकृष्ण की चरित्र - खनिजता मानवीय उदात्तीकरण के लिए सहज सुलभ है। युद्ध के चटख लाल रंगों की धधकती पृष्ठभूमि में अनासक्त गीता-गायक का निर्वेद नीलवर्णी व्यक्तित्व जिस अप्रतिम रूप में उकेरा या चित्रित किया गया है, उसका समकक्ष स्वयं भारतीय पौराणिकता में दूसरा नहीं है तब ग्रीक, यूनानी या चीनी पौराणिकता की तो बात ही क्या है। ' सांस्कृतिक परंपरा के प्रवक्ता एवं यशस्वी कवि श्री नरेश मेहता का उपर्युक्त कथन अक्षरशः सत्य है। भाषिक भास्वरता एवं सांस्कृतिक सौष्ठव के अन्वेषी समर्थ शिल्पी को कृष्ण धर्म-चिंतन-वृत्त के प्रशस्त 'व्यास' के रूप में प्रतिभासित होते हैं। उनके 'जीवन दर्शन' की तात्त्विक व्याख्या यहाँ अभिप्रेत है। उल्लेखनीय है कि यहाँ तत्त्व-व्यंजना ही ग्रहण की जा सकती है, 'तथ्योपलब्धि' नहीं।

आज 'उत्तर आधुनिकता' के सवाल उठाए जाते हैं। भारतीय संस्कृति के संदर्भ में यदि इस शब्द की व्याख्या की जाए तो इसके सबसे बड़े आलंबन ठहरते हैं कृष्ण । नर के 'नारायणत्व' की संभावनाओं की खोज करनी हो तो इसके सबसे बड़े मिथक बनेंगे कृष्ण। और आत्मा के विस्तार, व्यक्तित्व की व्यापकता अथवा आत्मप्रसार की साधना करनी है तो मानवीय चरित्र की पूर्णता के सबसे 'सिद्ध' प्रतीक हैं कृष्ण । वे मानवीय चेतना के शिखर पुरुष हैं और 'गीता' उस शिखर का आरोहण है। आत्मबोध के प्रतिफलन अथवा 'प्रज्ञा पारमिता' की उपलब्धि एवं आदर्श के उच्चतम प्रतिमानों की गवेषणा है-'गीता' । गीता एक प्रज्ञापुरुष के 'प्रभामंडल' का साक्षात्कार एवं 'विराटता बोध' के अनुभव का आख्यान है। सहज जीवन-शैली एवं 'समग्रता बोध' से परिस्फूर्त मानवीय सत्य का अनंत अनुभव कोष है। कृष्ण केवल गीता के गायक ही नहीं, गीता के प्राप्य भी हैं। कृष्ण गीता की परिभाषा हैं और उनका जीवन गीता दर्शन की प्रत्यक्षाभिव्यक्ति है। कृष्ण क्रांति-विधायक व्यक्तित्व एवं रूढ़िरहित जीवन-दृष्टि के कायल हैं; किंतु वे रूढ़ि विरोधी है 'परंपरा विरोधी' नहीं।

कृष्ण 'निर्ग्रन्थि भाव से जीवन को उसकी सहजता में जीने और गहराई के साथ जीवन-अर्थ को आत्मसात् करने का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। उनका प्रेमादर्श प्रेम को परिपूर्णता के साथ अकुंठ भाव से जीने का निर्देश करता है । कृष्ण स्वस्थ काम चेतना के विकास के आग्रही हैं। डॉ. शिव प्रसाद सिंह का मानना है कि 'वे वस्तुतः निषेध के नहीं, अनुराग के देवता हैं। ' उन्होंने गीता में अपने धर्म को अविरोधी 'काम शक्ति' बताया

'धर्माविरुद्ध कामोऽस्मि भरतर्षभ। '

कृष्ण 'ज्ञानयज्ञ' के अनुष्ठान के महत् अध्वर्यु होने के साथ ही प्रणय तंत्र के निष्ठावान् साधक भी हैं। कृष्ण साधना में बहुत पहले से काम पूजा का समावेश दिखाई पड़ता है । 'गोपाल पूर्वतापनीयोपनिषद्' में जिस 'गोपाल यंत्र' का उल्लेख है, उसमें काम गायत्री और काम माला मंत्र को बहुत ही महत्त्व दिया गया है। कृष्णोपासक कवि के लिए काम साधना में बाधक तत्त्व के रूप में नहीं, साधक शक्ति के रूप में मान्य था।

इन अर्थों में कृष्ण असीम हैं। वे किसी सिद्धांत की सीमाओं या प्रतिज्ञाओं में आबद्ध होनेवाले नहीं हैं। उन्हें किसी पूर्व निश्चित साँचे में नहीं ढाला जा सकता। वे जीवन पद्धति के सारे फॉर्मूले झटक देते हैं। उन्हें मापने के लिए सारे स्केल छोटे पड़ जाते हैं। उनका प्रयोगधर्मी व्यक्तित्व अभिनव जीवन-शैली का आविष्कार करता है । उनके व्यक्तित्व में अंतर्विरोधों का अनुरोध दिखाई पड़ता है। उनके चरित्र में दो विपरीत ध्रुवों का स्पर्श दृष्टिगत होता है। भोग और योग, वासना और विज्ञान, संसार और परमार्थ का संश्लिष्ट समुच्चय तथा काम और राम के समानुपाती संबंध का घोषणा पत्र है उनका व्यक्तित्व। वासना को उपासना में बदलने का अमोघ रसायन उनके पास है। कबीर के 'सुरति' (सुतराम् रतिः) के 'निरति' (नितराम् रतिः) में पर्यवसान की कला का 'बीज मंत्र' कृष्णचरित्र ही है। कर्मयोग को भावयोग और भावयोग (भक्ति) को ज्ञानयोग में परिणत करने की टेक्नीक निर्दिष्ट करने और सांख्यादि विभिन्न योगों की सम्यक् मीमांसा करनेवाले कृष्ण अद्भुत जीवन-शिल्पी हैं। वे सारस्वत चेतना और भागवत चेतना के 'संगमन

बिंदु' हैं। बौद्धिकता 'आधुनिकता बोध' का विशिष्ट लक्षण है। इस बौद्धिकता का आध्यात्मिक संस्कार करके प्रशांत चेतस् की उपलब्धि एवं 'विकल्पों' को 'संकल्प शक्ति' में परिणत करने का कौशल कृष्ण के ही पास है।

आध्यात्मिक स्तर पर आत्मा को विश्वात्मा में विसर्जित करने का आदर्श कृष्ण ने अपने आचरण में प्रमाणित किया। बूँद समुद्र बन गई। जीवन के 'अहम्' ने विस्तीर्ण होकर निखिल ब्रह्मांड को आच्छादित कर लिया और ब्रह्म की संज्ञा से विभूषित हो गई। असल में 'खुदी को मिटाकर खुदा हुआ जा सकता है'। कृष्ण ने संसार और संन्यास में सामंजस्य सूत्र की खोज की। जैसे जल में कमल रहता है वैसे ही संन्यासी को संसार में रहना चाहिए– 'पद्मपत्रभिवाम्भसा'; कमल जल में रहते हुए भी उससे ऊपर उठा रहता है। वह इतना स्निग्ध है कि जल उसपर पड़े भी तो फिसल जाएगा। इसी स्निग्ध चित्तता की उपलब्धि संन्यासी की साधना का अभीष्ट प्रयोजन है। हम संसार में रहें, किंतु संसार हममें न रहे। कृष्ण की परिभाषा में संन्यास 'वस्तु त्याग' नहीं, 'वृत्ति त्याग' है। कृष्ण पलायनवादी नहीं हैं। वे संसार को नहीं, उसकी 'पकड़' छोड़ने का आदेश देते हैं। वे 'दुःखवादी' जीवन-दर्शन के विरोधी हैं। इसीलिए कष्टसाध्य हठ यौगिक साधनाओं के स्थान पर सहज 'राजयोग' को प्रस्तावित करते हैं। ज्ञान और भक्ति का क्रियात्मक संमूर्त्तन उनका लक्ष्य है। वे बुद्ध की 'मध्यमा प्रतिप्रदा' के अत्यंत निकट हैं। इसलिए आसक्ति और विरक्ति के स्थान पर' अनासक्ति' का समर्थन करते हैं-न राग, न विराग, अपितु 'वीतराग' का वे मंत्र देते हैं। भगवान् रजनीश ने 'कृष्ण और हँसता हुआ धर्म में कहा है कि 'सामान्य संसारी का चित्त 'फोटोग्राफी प्लेट' की भाँति होता है, जिसपर एक व्यक्ति का चित्र अंकित हो गया तो फिर दूसरा चित्र नहीं बन सकता; किंतु ज्ञानी का चित्त 'दर्पण' की भाँति होता है जिसके सामने जो भी आता है, उसे पूरा-पूरा झलका देता है और जब व्यक्ति चला जाता है तो उसे पूरा-पूरा विदा कर देता है।' कृष्ण जब गोकुल छोड़कर मथुरा चले जाते हैं तो गोपियाँ तो उन्हें नहीं भूल पातीं, उनके चित्त-फलक या भाव-पट पर कृष्ण चित्रांकित हो गए हैंकुमार

'ठर में माखनचोर गड़े। अब कैसेहुँ नहिं निकसत ऊधौ,
तिरछे है जु अड़े॥'

उनकी त्रिभंगी मुद्रा उनके मानस में धँस गई है, किंतु कृष्ण मथुरा के होकर रह जाते हैं। जब गोकुल में थे तो गोकुल को पूरी प्रगाढ़ता के साथ जिया। अब मथुरा को अखंड मन से जी रहे हैं। वर्तमान की चुनावरहित अवधानता और 'साक्षी' भाव का प्रत्यक्षीकरण अन्यत्र दुर्लभ है।

यद्यपि यह कृष्ण की सीमा भी है। तर्कशास्त्र में ईश्वर की 'सर्वकर्तृत्व क्षमता' पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए पहला सवाल उठाया जाता है—'क्या ईश्वर ऐसा पत्थर बना सकता है जिसे वह स्वयं न उठा सके ?' कृष्ण 'कालिय नाग' का दमन तो करते हैं, किंतु जब विरहिणी राधा को काली रात नागिन बनकर इसती है तो उन्हें कृष्ण नहीं बचा पाते। सारी चेतना विषाक्त हो उठती है। सर्पिणी काटकर उलट जाती है और विरहिणी ममांतक पीड़ा झेलती हैदेशमुख धमतरी

'पिया बिनु नागिन कारी रात।
जौं कहुँ जामिनि उवति जुन्हैया, डसि है उलटी जाति॥'

घुप्प बादलों से सहसा चाँदनी का निकल आना सर्पिणी के काटकर उलट जाने के समान है। साँप का ऊपरी भाग 'चितकाबर' और निचला भाग सफेद होता है। काटकर उलट जाने की दशा में श्वेत भाग हो प्रत्यक्षीभूत होता है, जिसका साम्य चाँदनी की धवलता से है।

कृष्ण अत्यंत 'प्रगतिशील' चेतना के व्यक्ति हैं। प्रगतिशीलता के उस बिंदु तक अभी मानवीय सभ्यता को आना है। शत्रु को मारकर उसे आत्मपद प्रदान करना प्रतिक्रियाशून्य जीवन-दृष्टि का द्योतक है, जो प्रगतिशीलता का सर्वोच्च प्रमाण है। बिना हिंसा वृत्ति के हत्या (वध) करना किसी सुपर मानव के ही वश की बात है। शकटासुर, वत्सासुर, पूतना, तृणावर्त, अघासुर, केशी, कंस, शिशुपाल आदि का वध करते हैं कृष्ण; किंतु इस अर्थ में बुद्ध कृष्ण से अधिक प्रगतिशील ठहरते हैं। वे दुष्ट का नहीं, 'दुष्टता' का वध करते हैं। वे अंगुलिमाल जैसे डाकू को संन्यासी बना देते हैं। कृष्ण अपने अवतीर्ण होने का कारण बताते हुए कहते हैं

'परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।'

कृष्ण जानते हैं कि आत्मा का छेदन शस्त्रों द्वारा नहीं किया जा सकता। वह शरीर को पुराने वस्त्र की भाँति उतारकर नया शरीर ग्रहण कर लेगी। शिशुपाल फिर नए रूप में अवतरित होगा किसी चंगेज, किसी हिटलर के रूप में। फिर 'दुष्टों के विनाश' का क्या अर्थ ? ओशो ठीक कहते हैं कि 'दुष्ट को मारने का एक ही उपाय है, उसे साधु बना दो।'

कृष्ण एक पूर्ण मिथक हैं। वे परम देवता हैं। वे लोकोत्तर लक्षणों से युक्त हैं। वे फूल से भी कोमल और वज्र से भी कठोर हैं। एक हाथ में वंशी धारण करते हैं तो दूसरे हाथ में चक्र | वे भक्त वत्सल और निर्हेतु की कृपा करनेवाले हैं। उनके दो रूप हैं—'रस रूप' और 'ऐश्वर्य रूप'। रस रूप गोपाल के रूप में व्रज की वीथिकाओं में घूमता है तो ऐश्वर्य रूप मथुरा और द्वारिका के

वैभव के बीच अभिव्यक्ति पाता है। वे एक ओर गोपी-वल्लभ हैं तो दूसरी ओर गहन तत्त्व चिंतक-मनीषी। भगवान् शिव से उनकी पर्याप्त समानता है। एक नटवर नागर है तो दूसरा 'नटराज'। एक योगेश्वर है तो दूसरा योगिराज। दोनों कुशल नर्तक हैं। लगता है, योगी बनने के लिए नृत् कला में प्रवीण होना आवश्यक है। नर्तक होना प्रथम शर्त है योगी होने की। मन को नचाने के लिए पहले मन के अनुसार नाचना जरूरी है। काम है से मुक्त होने के लिए काम की समझ अपरिहार्य है। काम का निषेध नहीं, काम का जागरूक साक्षात्कार। काम के प्रति भोगवादी दृष्टि नहीं, प्रेम के प्रति पूजा का भाव। प्रेम परमात्मा की विभूति है। उसके रचनात्मक अर्थ के प्रति आस्थावान् होने की संकल्पना के

सदिच्छा वरेण्य है । कृष्ण के प्रणय व्यापारों अथवा 'रासलीला' जैसे जीवन-संदर्भों का 'अलौकिकीकरण' करके उसमें आध्यात्मिक अनुशासन का निर्देश कर दिया गया। उसकी सही व्याख्या नहीं की गई।

वस्तुत: अज्ञान बाँधता है, ज्ञान मुक्त करता है। परमात्मा के ज्ञान से वासना- मुक्ति नहीं होती, आत्मज्ञान से, वासना के बोध से वासना-मुक्ति संभव है। जागतिक सौंदर्य में भी उसीका आस्वाद निहित है। उसीकी शक्ति विभिन्न रूपों में अनुभूत होती है। सारे रूप उसी अरूप के हैं। सारे दृश्य के पीछे उसी अदृश्य का हाथ है। सारे आकार उसी निराकार की सूचना से भरे हैं। सृष्टि का प्रत्येक परमाणु परमात्मा की शक्ति से ही परिस्फूर्त है । सारे जागतिक उपकरणों पर उसीके हस्ताक्षर हैं। सृष्टि परमात्मा का सगुण और व्यक्त रूप है। कृष्ण 'गीता' में कहते हैं कि सब कुछ मैं ही हूँ-यज्ञ की क्रिया, हवन, होता, अग्नि, अध्वर्यु, मंत्र - सब मैं ही हूँ। अतः आवश्यकता है प्रेम के प्रति पुनीत दृष्टि की, यज्ञभाव की।

गोपियों का 'चीर-हरण' प्रसंग बड़ा अर्थवाही है। गोपियों के वस्त्र उनके संस्कारों के प्रतीक हैं, माया के आवरण के प्रतीक हैं। इस आवरण को उतारकर नग्न भाव से (निष् होकर) सर्वात्मना समर्पित होने पर ही प्रभु अंगीकार करता है। कबीर कहते हैं-

'घूँघट के पट खोल रे, तोकों पीव मिलेंगे।'

'श्रीमद्भागवत' के अनुसार, 'वैधी भक्ति' का पर्यवसान' रागात्मिका भक्ति' में है और रागात्मिका भक्ति पूर्ण प्रपत्ति (समर्पण) में परिणत हो जाती है। यही निरावरण मिलन की अर्थवत्ता है। भागवत के कृष्ण गोपियों को आश्वस्त करते हुए कहते हैं कि जिस प्रकार भुने या उबाले हुए बीज फिर अंकुर के रूप में उगने योग्य नहीं रह जाते उसी प्रकार ईश्वरोन्मुख कामनाएँ सांसारिक भोगों की ओर ले जाने में समर्थ नहीं होतीं।

कृष्ण सौंदर्य के अद्वितीय प्रतिमान हैं। सौंदर्य वस्तुनिष्ठ भी है और व्यक्तिनिष्ठ भी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार- 'जिस प्रकार की रूपरेखा या वर्ण विन्यास के साथ चित्त की 'तदाकार परिणति' होती है, मन तद्रूप हो जाए, वही सौंदर्य का लक्षण है।' कृष्ण की रूपराशि के उद्दाम आकर्षण एवं ऐंद्रजालिक सम्मोहन के कारण गोपियों का मन तद्रूप (कृष्णमय) हो जाता है।

वस्तुत: जिस किसी व्यक्तित्व के साक्षात्कार के समय चित्त की तदाकार परिणति हो जाय, वहीं 'कृष्णत्व' की अवतारणा हो जाती है । 'गोचारण' कृष्ण के नैसर्गिक जीवन-बोध को प्रकट करता है, लोक जीवन के प्रति गहरी प्रतिबद्धता को सूचित करता है । 'गोवर्धन धारण' उनके दायित्व बोध के वहन का प्रतीक है। 'गोवर्धन पूजा' देवत्व के सापेक्ष मनुष्य की गरिमा की गहरी स्वीकृति का बोधक है। उन्होंने मनुष्य को देवत्व की महिमा से मंडित किया या देवत्व को मानवीय धरातल पर उतारा। उनकी दिव्यता में मानवीय सुगंध छिपी है। दर्पण की भाँति अनासक्त दृष्टि-बोध के साथ ही कृष्ण परम मुक्ति के प्रतिनिधि प्रतीक भी हैं। वे सही अर्थों में स्वाधीन व स्वतंत्रचेता व्यक्ति हैं। वे इतने मुक्त हैं कि 'जीत' से भी बँधे नहीं हैं। 'युद्ध में जीतेंगे ही', ऐसा आग्रह भी उनके मन में नहीं है। वे हार भी जाते हैं, पराभव का आलिंगन भी कर लेते हैं। वे इतने कमजोर नहीं कि हार को न सह सकें। इसलिए वे जरासंध से हार जाते हैं। वास्तव में कृष्ण का चित्त संस्कारशून्य है, जिसमें कोई विचार या आग्रह रेखांकित नहीं है। कृष्ण प्रेम से भी बँधे नहीं हैं। उनका प्रेम बंधन नहीं, मुक्ति का द्वार है। उनका प्रेम संबंधगत' नहीं, 'स्वभावगत' है। कृष्ण के भोग में छिपे योग को सूक्ष्मदर्शी दृष्टि ही लक्ष्य कर सकती है। देहासक्ति के अतिक्रमण या 'विदेह' होने की खरी कसौटी प्रस्तुत करते हुए गोरखनाथ कहते हैं

'नौ लख पातरि आगे नाचैं, पाछैं सहज अखाड़ा।

ऐसो मन लै जोगी नाचै, तब अंतरि बसै भंडारा॥'

विषय के उपस्थित रहने पर भी मन में विक्षेप न हो, मन स्पंदित न हो - यह योगी होने का निकष है। शरीर के संपर्क में आने पर भी विषय मन का स्पर्श न कर सके, मन निर्विकार रहे। कृष्ण सोलह हजार एक सौ आठ गोपियों के साथ 'रास' रचाते हैं, परंतु उनका मन उसमें रस नहीं लेता। वे नाचते हैं, परंतु मन नहीं नाचता; मन स्थिर है। कृष्ण अंतर्दशा को अधिक महत्त्व देते हैं। शरीर का कोई मूल्य नहीं। वस्तुतः यदि हमारा मन पवित्र, शांत और समाहित है तो हम जो भी बोलेंगे, वह वेद होगा और यदि हम वासना में प्रतिष्ठित हैं तो वेद भी बोलेंगे, तब वह 'कामसूत्र' का आख्यान होगा।

भाव-जगत् में कृष्ण का प्राकट्य बड़ा ही अर्थपूर्ण और मांगलिक है। भाद्र मास की अष्टमी की मध्य रात्रि (निशीथ) में आनंदकंद भगवान् श्री कृष्णचंद्र (चंद्रवंशी) का प्राकट्य होता है। कालेश्वर के आगमन के समय काल ने बड़ा सौम्य रूप धारण कर लिया। समस्त ग्रह नक्षत्र अनुकूल और उदार हो गए। संपूर्ण प्रकृति में रमणीयता छा गई। दिशाएँ प्रसन्न हो गईं। शीतल-मंद सुगंधित वायु बहने लगी। हीरे आदि की खानें मंगलमय हो गईं। धरती पर समृद्धि छा गई। भीतरी दरिद्रता नष्ट हो गई। अभाव का अभाव हो गया। नदियों ने सोचा, 'निर्मल हृदय से ही भगवान् मिलते हैं।' अतः नदियों का जल निर्मल हो गया। 'कल-कल' का आश्वासन 'आज' में बदल गया। रात्रि के समय भी सरोवरों में कमल खिल रहे थे। सज्जनों के सुमन (सुंदर मन फूल) खिल गए। वन में वृक्षों की पंक्तियाँ रंग-बिरंगे पुष्पों के गुच्छों से लद गई थीं। कहीं पक्षी चहक रहे थे, तो कहीं भ्रमर गुंजार कर रहे थे

'नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः। द्वि जालिकुलसंनादस्तवका वनराजयः॥' (श्रीमद्भागवत)

अशेष प्रकृति का शेषशायी के आविर्भाव के उपलक्ष्य में उत्सव मनाना वस्तुतः कृष्ण के 'विश्वव्यापी प्रभाव' का सूचक है। जब भी कोई विराट् बुद्ध चेतना अवतरित होती है तो धरती उल्लास से भर जाती है। जाग्रत चेतना के अवतरण के समय संपूर्ण प्रकृति जाग जाती है। रात्रि के घनघोर अँधेरे में कृष्ण का प्रकाशित होना मोहाच्छन्न आकाश में, अज्ञान के निविड़ांधकार में दिव्य ज्ञानोदय अथवा सत्य के आलोक के प्रस्फुटन का प्रतीक है

'या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।' (गीता)

कृष्ण का 'दर्शन' उनके जीवन व्यापारों पर पूर्णतः घटित या चरितार्थ होता है। इसीलिए उसे सही अर्थों में जीवन दर्शन की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। कृष्ण घोषणा करते हैं– **'ये यथा मां पपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'**

जो मुझे जिस भाव से भजते हैं, मैं उन्हें उसी भाव से भजता हूँ। विभिन्न भक्तों ने उन्हें अपने-अपने भाव के अनुरूष भजा। अपनी आकांक्षाओं के अनुसार कृष्ण की मूर्ति को गढ़ा या कृष्ण में अपनी भावनाओं को पढ़ा। विभिन्न शास्त्रों में विहित कृष्ण का रूप भी भिन्नभिन्न है। वस्तुतः कृष्ण एक मिथक हैं, जिनके ऐतिहासिक विकास की एक सुस्पष्ट श्रृंखला है। वे भारतीय वाङ्मय के प्रमुख उपजीव्य हैं। वे ऐतिहासिक व्यक्ति हों या न हों, आदर्श पुरुष अवश्य हैं। वे चिरंतन सांस्कृतिक चिंतन के अक्षय प्रेरणास्रोत हैं। **–कन्नौज**

(प्रो. विद्यानिवास मिश्र जी ने इस आलेख को अपने "साहित्य अमृत" में प्रकाशित किया था।)

समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तक

समीक्षा

मत कहो, आकाश में कुहरा घना है...

अजित कुमार राय

सारे जीवन छंद - साधना के बाद निराला ने मुक्त छंद में रचने का विवेक अर्जित किया और सारी जिन्दगी छंद मुक्त नयी कविता के आलेखन के अनुभव की निष्पत्ति के रूप में दुष्यन्त कुमार ने छंद का अनुशासन उपलब्ध किया । अपने 42 वर्षों के अल्प जीवन में चिरंजीवी काव्य - प्रविधि के आविष्कार का श्रेय दुष्यन्त कुमार को जाता है । हिन्दी गजल के प्रवर्तक दुष्यन्त कुमार "एक कंठ विषपायी" के द्वारा अमृत का आचमन करते हुए हिन्दी जगत को "साए में धूप" सौंपते हैं जो एक कालजयी रचना है । हिन्दी में 'रामचरितमानस' और कबीर की साखियों के बाद लोक मानस में सबसे अधिक उद्धरणीयता दुष्यन्त कुमार और धूमिल की है । संसद के सबसे बड़े आलोचक धूमिल और दुष्यन्त कुमार को संसद के भीतर बार बार उद्धृत किया जाना उनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा प्रमाण है । देश में आपातकाल लागू किए जाने पर भी प्रच्छन्न रूप से वे सत्ता की आलोचना करने से नहीं चूकते–

मत कहो, आकाश में कुहरा घना है,

यह किसी की व्यक्तिगत आलोचना है ।

इस कुहरे की छाया आज भी सामाजिक परिदृश्य में दिखाई पड़ती है । राजनैतिक सन्दर्भों की यह प्रासंगिकता दुष्यन्त को एक द्रष्टा की भूमिका प्रदान करती है । संसद से सड़क तक फैले यथार्थ के विभिन्न स्तरों को उसके मूल अक्ष पर बेधते हुए इतनी पैनी और मारक भाषा में अभिव्यक्ति देना आम कवि के बूते का नहीं है । आम आदमी की चर्चा भी लोग खास कवि बनने के लिए ही करते हैं । लेकिन जनकवियों को आज कितने जन पढ़ते हैं? आज समरूपीकरण और मानकीकरण के शिकार प्रगतिवादी कवियों के झुण्ड प्रायः जो कविता लिख रहे हैं, वह खराब गद्य का नमूना भर है, जिसे कविता कहलाने के लिए वे प्रतिबद्ध हैं । अकादमिक प्रतिष्ठानों में कैद कविता का उत्तर जीवन कैसा होना चाहिए? कविता को लम्बी उम्र प्रदान करने वाले हजारों साल की छंद - साधना कविता का विलोम कैसे हो सकती है? दुष्यन्त कुमार जैसे नयी कविता और समकालीन कविता के बीच एक दायित्व - चेतना से परिस्फूर्त सेतुबंध हैं, ठीक वैसे ही लोकप्रिय कविता और श्रेष्ठ कविता के बीच भी एक सेतु रचते हैं–

तू किसी रेल सी गुजरती है,

मैं किसी पुल सा थरथराता हूँ ।

प्रेम के अनुलोम - विलोम का सात्विक अनुभाव, कंपन और स्पंदन का इतना सघन रचाव, काव्यार्थ की सान्द्रता, अभिव्यक्ति की तीव्रता दुर्लभ है । गजल को जुल्फों की कैद से निकाल कर सामाजिक - राजनैतिक विद्रूप को ऐतिहासिक समझ और सन्तुलन के साथ भाषा में निबद्ध करने का जो लाघव और अर्थ - गाम्भीर्य दुष्यन्त कुमार में है, उसी ने हिन्दी गजल की एक नई परम्परा का सूत्रपात किया । जिस नये "सूर्य का स्वागत" दुष्यन्त ने किया, उसने उनके सृजन में ताजगी और टटके बिम्बों का आविष्कार किया –

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,

ये कंवल के फूल कुम्हलाने लगे हैं ।

इस कथ्य में सामाजिक परिवर्तन के लिए संघर्ष का स्वर मुखरित हुआ है । किन्तु काव्य - चेतना और युक्ति के विपर्यास के अन्तर्ध्वनन की तीव्रता भी इसमें संलक्ष्य है । आज के जटिल जीवन के तनाव को संश्लिष्ट भाषा में विन्यस्त करने का कौशल दुष्यन्त के पास है और आज नवगीत, दोहे, गजल आदि छांदस् विधाएँ भी समय के अन्तर्द्वन्द्व को सामर्थ्य के साथ व्यक्त कर रही हैं । व्यंग्य आज की कविता का प्राणतत्व है, किन्तु स्वतंत्र विधा के रूप में इसके विकास और रबर की तरह फैलाव ने व्यंग्य की धार भोथरी कर दी है । इसीप्रकार अकविता से होड़ लेने के चक्कर में बहुधा गीत भी अगीत बनता दृष्टिगत होता है । आज आम बोलचाल के प्रचलित शब्दों को बातचीत के ढांचे में स्वीकार करके कूट वक्रता के साथ समकाल की कविता लिखी जा रही है तो धैर्य के साथ एक खास तापमान पर समय की संवेदना को पकने के बाद गजल जीवनानुभवों के सारांश को नुकीली अभिव्यक्ति देती है–

कैसे आकाश में सूराख नहीं हो सकता,

एक पत्थर तो तबीयत से उछालो यारों!

विधेयात्मक दृष्टि से परिस्फूर्त इस शेर का अर्थ - बंध सकर्मक ज्ञानात्मक संवेदना से उद्भूत है। दुष्यन्त कुमार आदमी को जानवर की जिन्दगी और कुत्ते की मौत तक पहुंचाने वाली व्यवस्था पर तीखा प्रहार करते हैं और इसके लिए अपने भीतर आग संचित करते हैं, जिसकी आंच उनकी काव्य भाषा को ताम्बई मुद्रा प्रदान करती है–

मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,

हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।

उनकी क्रान्ति धर्मिता और युयुत्सा सनसनीखेज बयान नहीं, सार्थक बदलाव का मंत्र देती है–

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,

मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।

सूरत बदलने के लिए ही कविता की सीरत या तासीर बदलनी पड़ी। अन्यथा आज की गद्यब्राण्ड सिंथेटिक कविता तो हंगामा भी खड़ा नहीं कर पा रही है और वह मूल सामाजिक संस्कृति के हाशिये पर चली गई है। साहित्य की अन्तर्वर्ती स्थिति के सन्दर्भ में देखें तो कविता कथा - साहित्य के कोष्ठक में चली गई है और अपने शिविर में अकादमिक प्रतिष्ठानों की चर्चा में सिमट कर रह गई है। लोक मानस से निर्वासित कविता कब तक जीवित रह सकेगी? आलोचना का अंधा कानून भी इसके लिए उत्तरदायी है। तो साहित्य की इस सत्ता के विरुद्ध हंगामा तो खड़ा करना पड़ेगा। इसका अर्थ यह नहीं कि कविता को बाजारू उपादान बना दिया जाए। लेकिन कविता के विमर्श में छंद मुक्त कविता के साथ ही नवगीत दोहे गजल आदि अनुषंगों को भी उसी सम्मान के साथ शामिल किया जाए। किन्तु जो आरक्षण की मलाई खा कर केन्द्रीय सत्ता पर अधिष्ठित हो चुके हैं, वे अब क्रीमीलेयर में होने के बावजूद आरक्षण का लाभ छोड़ना ही नहीं चाहते। जिन्हें छंदों का ज्ञान ही नहीं है या जो कसे हुए छंद के दो बंध नहीं लिख सकते, उन्हें भी कवि बनने की छूट मिल गई और आज सोशलमीडिया ने तो आज सबको कवि बना दिया। डॉ नामवर सिंह कहते हैं कि सपाटबयानी वस्तुतः गद्य सुलभ वाक्य विन्यास को प्रतिष्ठित करने का आग्रह था जो कवि के समाज से जीवंत सम्पर्क का सूचक है और वाक्य विन्यास का दामन छोड़ना कवि के स्नायु दौर्बल्य का सूचक है। " समझना कठिन नहीं है कि कविता से ही समाज का जीवन्त सम्पर्क क्यों टूट गया। जबकि उसके अन्तर्वस्तु में सामाजिक सम्पृक्ति बहुत अधिक है। इसमें समय की समाजशास्त्रीय संरचना भी काफी हद तक जिम्मेदार है और शिल्प भी। नागार्जुन की श्रेष्ठ और लोकप्रिय कविताओं में मुक्त छंद का अद्भुत प्रवाह है। "अकाल और उसके बाद", " सिन्दूर तिलकित भाल ", " कालिदास सच सच बतलाना ", " बादल को घिरते देखा है " आदि कविताओं में सामासिक शैली के बावजूद विस्मय जनक रवानगी है और बहु प्ताड़ित भावोच्छवास भी। निराला की "राम की शक्ति पूजा" ही कालजयी रचना है, 'कुकुरमुत्ता' नहीं। राष्ट्रकवि आज भी दिनकर ही हैं, धूमिल नहीं। यद्यपि सूक्ति प्रिय कवि धूमिल जब शोषण के मर्म का संज्ञान लेते हुए लिखते हैं–

लोहे का स्वाद लुहार से मत पूछो,

उस घोड़े से पूछो,

जिसके मुंह में लगाम है।

तो काव्यार्थ की सान्द्रता और भाषा का घनत्व देखते ही बनता है। जो बात पूरे छंद में नहीं कही जा सकती, वह एक पंक्ति में कह दी गई। अथवा जब अशोक वाजपेयी कहते हैं ----

"मैं उठाता हूँ एक शब्द,

और किसी पिछली शताब्दी का वाक्य विन्यास विचलित होता है। "

तो शब्दों के ऐतिहासिक अर्थ के संयोजन और अर्थ - संवेदना में परिवर्तन के साथ ही नये निकष पर परम्परा के पुनर्मूल्यांकन का आशय भी संश्लिष्ट भाषा में परावर्तित होता है। अर्थात् केवल तुकबंदी कविता नहीं है और न ही वक्तव्य मात्र कविता है। सार्थक सृजनशीलता दोनों ही रूपों में गतिमान है। दुष्यन्त कुमार के गजलों की गतिज ऊर्जा समय के पहिए में गीत की लय खोज लेती है–

हर सड़क पर, हर गली में, हर नगर, हर गाँव में,

हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए।

कविता ऐसी ही होनी चाहिए जो मुर्दे में प्राण फूंक दे। यह फन्तासी हर दलित, हर वंचित को ऊर्जस्वित करते हुए क्रान्ति का शंखनाद करती है। औसत भारतीय मनुष्य की फटेहाली और निर्धनता को कूट वक्रता के माध्यम से दुष्यन्त ने सशक्त अभिव्यक्ति दी है–

वो आदमी नहीं, मुकम्मल बयान है,

माथे पे उसके चोट का गहरा निशान है।

कल नुमाइश में मिला वो चीथड़े पहने हुए,

मैंने पूछा नाम तो बोला कि हिन्दुस्तान है।।

याद आता है स्वाधीनता से पहले का वह लंदन का गोलमेज सम्मेलन, जहाँ डेढ़ गज धोती लपेटे गांधीजी जब बोलने के लिए खड़े हुए तो उनका पहला वाक्य था–

आई एम द इण्डिया।

तालियाँ बजती रहीं और अंग्रेज सांसद चिल्लाने लगे कि भारत को आजाद करो। जिस देश का नेता ही भूखा - नंगा हो, उस देश का क्या हाल होगा! दुष्यन्त कुमार के भीतर करोड़ों लोग रहते हैं। इस लिए उनकी हर गजल सल्तनत के नाम एक बयान है। सदियों से जिनकी आत्मा पर चोट के गहरे निशान हैं, उनकी पक्षधरता में खड़े दुष्यन्त कुमार प्रगतिशील आलोचना को कुछ कम प्रतिबद्ध लगते हैं। उनके रचना - संसार में आम आदमी की पीड़ा का आख्यान है–

हो गई है पीर पर्वत सी, पिघलनी चाहिए,

अब हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।

यहाँ शोक श्लोक में पर्यवसित हो जाता है। अन्यथा हिमालय से तो और भी नदियाँ निकलती हैं। जापान के कवि योन नागुची ने एक किताब लिखी थी ---- द गैंगेज काल्स मी। गांधीजी ने वह पुस्तक गाजीपुर जिले के श्रीकृष्ण राय 'हृदयेश' को दी। उन्होंने उसका हिन्दी काव्यानुवाद किया --- "गंगा मुझे पुकारे"। इस सनातन सांस्कृतिक अन्तर्धारा को अदम गोंडवी नहीं पहचान सके जो अपनी प्यास को गंगा के बजाय मदिरालय तक ले जाना चाहते हैं। बिना मांस - मदिरा के इन प्रगतिशील चिन्तकों की कविता नहीं फूटती। अरे कविता का नशा इतना सर्वातिशायी हो कि किसी ठर्रे की जरूरत ही न पड़े। हिंसक चित्तवृत्ति से निकला हुआ साहित्य दो कौड़ी का है–

कहाँ तो तय था चरागां हर एक घर के लिए,

कहाँ चिराग मयस्सर नहीं शहर के लिए।

यहाँ चिराग ज्ञान के आलोक के साथ ही आर्थिक और सार्वत्रिक समृद्धि के लिए अप्रस्तुत के रूप में व्यवहृत हुआ है। बोध - वृत्ति का रूपक यह चिराग, भाषा की आलोक मंजूषा अपने पीछे कितना अंधेरा छोड़ जाती है! दीपशिखा कालिदास बहुत याद आते हैं। अज्ञेय की यह मंगलाशा कितनी प्रासंगिक है!

मैं यह नहीं चाहता कि मेरे घर में रोशनी हो।

मैं तो यह चाहता हूँ कि रोशनी के घेरे में मेरा घर हो।

किन्तु विज्ञान की विभीषिका रूस - यूक्रेन युद्ध और इजराइल - फिलीस्तीन के संघर्ष में प्रतिफलित होती है। अतिवादी जीवन - दृष्टि, साम्प्रदायिक उग्रता तथा रूढ़िवादी धर्मान्धता का विप्लव सामाजिक समरसता का निषेध करता है–

बाढ़ की सम्भावनाएँ सामने हैं,

और नदियों के किनारे घर बने हैं।

बांग्लादेश में हिन्दुओं की दारुण स्थिति की छाया इस गजल में देख सकते हैं। इस लिए कवि एक दूसरे प्रजातंत्र की तलाश करता है–

यहाँ दरख्तों के साए में धूप लगती है,

चलो, यहाँ से चलें और उम्र भर के लिए।

यहाँ चांद की चढ़ाई और मंगल - अभियान का प्रस्ताव नहीं है। यहीं काई को खुरच कर सूर्य का स्वागत करने या वैकल्पिक व्यवस्था के आविष्कार का आह्वान है। छायाद्रुमों की तलाश है। बहुमत के नाम पर प्रतिष्ठित यह लोकतांत्रिक प्रपंच वस्तुतः अल्पतंत्र का ही ऐश्वर्य - प्रसार है। अब तो कविता के उद्यान में भी धूप की धमक या दंवक महसूस होती है। जैविक अनुभूति को विचारधारा ने अपदस्थ कर दिया है। ईमानदारी और सत्यान्वेषी नैतिक साहस तो संग्रहालय की वस्तु बन गए हैं। कौन जानता था कि एक ईमानदार आवाज इतनी जल्दी चली जाएगी। **–कन्नौज**

एन डी टी वी के सीनियर एंकर श्री सुमित अवस्थी जी के साथ बोलते हुए...

समीक्षा

संशयात्मा: कविता का आत्मान्वेषण

अजित कुमार राय

ज्ञानेन्द्रपति ने कविता का निजी मुहावरा विकसित किया है । उनकी कविताएँ जीवन साधना की फलश्रुति हैं । उनमें जीवनानुभवों का सारांश बोलता है । अपने ही खेत-खलिहान और सांस्कृतिक सिवान से अपरिचित आधुनिकों को ज्ञानेन्द्रपति अपील नहीं करते । यद्यपि उनके नए संग्रह 'संशयात्मा' में भी उनकी कविता के गाँव का पता बहुत नहीं बदला है, किन्तु उसका क्षितिज फैल कर विश्वाकार हो गया है । उनकी रचना में गँवई संवेदना का रसायन बहुत गाढ़ा है । ''उनके 'गंगातट' में स्थानिकता के जल-दर्पण में आज के वैश्विक समय की थाह मिली थी तो संशयात्मा का परिसर विश्व विस्तृत है । '' फिर भी उनके श्वेत-श्याम चित्रों में बनारसी रंग मौजूद है । बनारसी परिधान में उनकी कविताओं का प्रभामंडल और दीप्तिमान, और भास्वर हो उठता है । दरअसल वे 'चोटी' के विद्वान प्रो0 विद्यानिवास मिश्र के शहर के कवि हैं । उनकी कविताओं को पढ़ने पर हमारा 'आज्ञाचक्र' खुल जाता है । हालाँकि इस शब्द का प्रयोग करते हुए बहुत डर लगता है कि कहीं मुझे 'रूढ़िवादी' या 'साम्प्रदायिक' होने का सर्टिफिकेट न दे दिया जाय । आज के बाजार में यह कीमत चुका कर भी मैं उन मूल्यों के पक्ष में खड़ा होना चाहूँगा, जो भोग नहीं त्याग के तिलकोत्सव में सम्मिलित होते हैं । अच्छा है ज्ञानेन्द्र की कविताओं को विज्ञापन-बाजार की 'नजर' नहीं लगने पायी है । नेटवर्क का बाजार जो हर व्यक्ति के चेहरे पर 'उपभोक्ता नम्बर' चस्पा कर देता है । जहाँ हम 'धोती' उतार कर ही काम में प्रवृत्त हो सकते हैं । जहाँ सौन्दर्य-शास्त्र में केवल देह बची है, आत्मा अनुपस्थित है । देह की भी एक आत्मा होती है । इस दैहिक ताप-निरोधी समय में 'संशयात्मा' का प्राकट्य काफी आश्वस्त करता है । 'संशयात्मा' के भीतर आत्मा छिपी हुई है । वही आत्मा उत्सर्ग का प्रतिमान रचती है । ज्ञानेन्द्रपति सांस्कृतिक बिम्बों के प्रति आस्थावान् हैं, 'आस्तिक' नहीं । आस्तिकता का उन्होंने अपना 'पाठ' ग्रहण किया है । आस्तिकता को उन्होंने परिधान की तरह नहीं पहना है । वे प्रगतिशील परम्परा के रचनाधर्मी हैं । आधुनिकता को जातीय समृद्धि देने वाली शब्द-शिल्पी । रचना-कोष की यह समृद्धि उनके समकालीनों में दुर्लभ है । वे चिन्तन की आनुवंशिक परम्परा का अतिक्रमण तो करते हैं, निषेध नहीं । वे भागवत पापों का लव-कुश की तरह परिशोधन भी वाणों की नोंक से करते हैं । जो अपने भीतर देखने में समर्थ हो जाता है, वही बाह्यार्थ को भी ठीक ढंग से देख पाता है । इन अर्थों में ज्ञानेन्द्रपति ऋषिकल्प रचनाकार हैं । प्रकृति को पूज्य भाव से जीने वाले क्रान्तदर्शी कवि । उनकी सारी ज्ञानेन्द्रियाँ आँख बन गई हैं । आँख जो अपलक खुली रहती है और समाज-सत्य का निष्कवच साक्षात्कार करती है । आँख को सबसे अधिक चोट लगती है । चोट से पहले चोट लगती है । यह भविष्य-दृष्टि ज्ञानश्री के पास है । उनकी यह आँख उनके शब्दों में भी संक्रमित हो गयी है । उनकी गिरा अनयन नहीं है । उनकी आँखों के जल-दर्पण में प्रतिबिम्बित हमारा रचना-समय आभासी नहीं, वास्तविक है । पुरस्कारों की मिठास को मन में चुभलाते रहने वाले इस वास्तविकता को न समझ सकते हैं, न जी सकते हैं । शब्द-स्वैराचार से बच जाना और अपने 'नाम' को सार्थक बनाए रखना ही उनका सबसे बड़ा पुरस्कार है ।

ज्ञानेन्द्रपति की कविताएँ बड़ी साँस की कविताएँ हैं । उनकी कविता हैलोजन बल्ब की स्मृति में सुरक्षित मिट्टी के दीए की लौ अथवा मोमबत्ती का मधुर आलोक है, जिसमें वस्तुओं को गहराई से निर्धूम देखने के लिए काफी एकाग्रता या भाव-समाधि की अपेक्षा होती है । मोमबत्ती की तरह ही उनकी कविताओं की ताशीर ठंडी होती है, चाहे उनमें कितना ही संताप क्यों न भरा हो । जैसे सूर्य का सारा ताप पीकर भी चन्द्रमा शीतलता ही बाँटता है । उनकी कविता की धुरी कहीं आकाश में है, पर वह धरती के 'गुरुत्वाकर्षण' से बेतरह बँधी है । शरीर सृष्टि की नाभि है । और ज्ञानेन्द्र की कविता कस्तूरी-गंध की तरह अपनी ही नाभि से आती हुई प्रतीत होती है । यही उसका धातुगत वैशिष्ट्य है । विन्यास के क्रम में एक कविता दूसरी में डिजॉल्व होती चलती है । यह ग्रंथ के प्रबन्धात्मक शौर्य का प्रमाण है । जीवन का व्यापक फलक उनकी कविताओं में अर्थ-विस्तार प्राप्त करता है । समय के साक्ष्य में

चिरन्तन मूल्यों का संधान कविता का लक्ष्य है और इस लक्ष्य-बेध में कवि ने पूरी एकाग्रता का परिचय दिया है। सीधे जीवन का भेदन करती इन कविताओं में प्रायः वस्तुनिष्ठता के साथ अपने समय के अनुभवों को अभिव्यक्ति मिली है। जीवन और जगत के प्रति आलोचनात्मक विवेक दूरसंवेदी ध्वनियों के साथ उनकी कविता में मौजूद है। सृष्टि के प्रत्येक कण में काव्य-सौन्दर्य की तलाश और प्रत्येक वण्र्य विषय की 'आणविक संरचना' का मॉडल प्रस्तुत करते उनके रचना-संसार में 'मानव-बम' फट पड़ा है। मनुष्य के सर्व संहारी आत्म-विस्तार को टोकती इन कविताओं का क्षैतिज विस्तार भारतीय समाज की लम्बवत् संरचना को काटता हुआ शोषित-पीड़ित के पक्ष में खड़ा होता है, किन्तु कम्युनिष्ट घोषणा-पत्र के रूप में नहीं। विज्ञापित राजनीति-गंध सूँघना इन रचनाओं का चरित्र-हनन है। हाँ, कहीं-कहीं दक्षिणपंथी शक्तियों के ऐकान्तिक विरोध में ये जरूर 'शीर्षासन' करती हुई प्रतीत होती हैं। किन्तु संशय यात्रा की पूर्वशर्त है और विश्वास यात्रा का निषेध। असल में ईश्वरवादियों ने ही ईश्वर को अप्रासंगिक बना दिया है-

''पर्व-त्यौहार के नेपथ्य में / उत्सवी परिधान में सजता हुआ ईश्वर / जब मंच पर आता है / अभय मुद्रा में उठा हुआ उसका हाथ / अचानक हमें भय से भर देता है।''

दंगा ईश्वर को नंगा कर देता है। शहर की सड़क-शिराओं में उन्माद की तरह दौड़ने लगता है हमारा खून और हँकड़ते-दौड़ते हममे जी उठता है महिषासुर। मानवता की जययात्रा को मानवीयता की अपमृत्यु का अंदेशा कवलित कर लेता है और शेष बचते हैं अशरफ के कटे अद्वितीय कारीगर हाथ और अनवर का एक बालक-मुण्ड। छूट जाता है- समय के पन्नों पर लहू का एक धूमिल निशान जो अग्निपक्षी की तरह जी उठता है कवि की कविताओं में अपनी ही राख से, अपनी ही आग से। दूसरा कोई होता तो इसे चुनाव-निशान में बदल डालता। 'सीतामढ़ी' शीर्षक कविता पढ़कर यशपाल की 'शिव-पार्वती' कहानी के फ्रेम की याद ताजी हो आती है। सीता या शक्ति की प्रतिमा में अशरफ की माँ की छवि का ही अवतरण होता है, जिसे कट्टरपंथी भूल जाते हैं। ''ज्ञानेन्द्र की कविताओं में हमारे समय की साँवली सच्चाइयाँ दर्ज हैं, दूधिया मिथ्याओं को सहज ही अनावृत करती हुईं।'' किन्तु ईश्वर व्यापी भय की घड़ियों का आकलन करते हुए कहीं न कहीं कवि को लगता है कि मनुष्य पर निगाह रखने के लिए ईश्वर जरूरी है-

''अपनी अन्तहीन गिनती कभी नहीं भूलती हुई
घड़ियाँ ताक रही हैं आदमी को निर्निमेष
कोई चाहिए जो आदमी पर निष्पलक निगाह रखे
वह ईश्वर हो या घड़ी / दूर तक जाए जिस की परछाईं।''

लेकिन गाँव की परछाईं छोटी होती जा रही है-

''डूबती तरैयाँ और डूबती बिरियाँ / निकलता था जो दिशा-मैदान के लिए / और अब जिसकी किसी भी दिशा में कोई मैदान नहीं; / जब हमारी उछलती गेंद से नीचे होता था सूरज, / ढलते सूरज को भी जब हम गेंद / की तरह उछाल देना चाहते थे ऊपर।''

गाँव के घर को काफी जगह दी है कवि ने। घर जिसके भीतर आने से पहले खाँस कर परोक्ष सूचना देनी पड़ती थी बुजुर्गों को। एक अदृश्य पर्दे के पार से पुकारना पड़ता था। इसके बरक्स कलकत्ते में बिड़ला के नाम पर बने तारामंडल का प्रकाश मद्धिम है। इस गाँव में ज्ञानेन्द्र सिर्फ पिकनिक मनाने नहीं जाते। इस गाँव को पूरी संसक्ति के साथ उन्होंने जिया है। एक आदिवासी गाँव से गुजरती बस में बैठे लोगों की समवेत दृष्टि-रेख का गत्यात्मक बिम्ब चाक्षुष प्रतीति कराता हुआ कवि की संवेदनशील दृष्टि का प्रमाण प्रस्तुत करता है-

''अलसाती सी उठ रही स्त्री की आँखों
से मिलती जाती आँखों की एक कतार।''

सत्य से आँखें मिलाना आसान नहीं। सूअरों के बच्चों के साथ खेलते सड़क छाप आदिवासी बच्चों के बाप मजदूरी की तलाश में जा रहे हैं-

''बँहगियाँ उठाए/ पंजाब का देखने सूर्योदय
जहाँ सूर्य पूरी रोटी की तरह गोल / गेहूँ के खेतों के ऊपर''

ज्ञानेन्द्र शीशहीन तकिया को भी शिरोधार्य करते हैं और उसके स्वप्न की फैंटेसी को लिपिबद्ध करने के प्रयास में उस कूड़ास्थल तक पहुँचते हैं - ''जहाँ पहुँच कर फेंकी गई टूटी चप्पलों को भी पाँव निकल आते हैं।'' वहाँ कंधे पर बोरे का झोला लटकाए एक मैला-कुचैला बालक पहुँचता है, जो कूड़े के निरर्थक में से सार्थक तत्वों को बीछ-बीन लेता है-

''उन्हीं के साथ शुरू होगा इस तकिए का / दूसरा स्वप्न-जीवन।''

पसीने और सपनों की गंध से भरी एक मुर्दा-तकिया जिस समाज के नौनिहालों का सपना हो, धिक्कार है उस मुर्दा समाज को। ऐसे ही 'दुरबंसिया' शीर्षक कविता में भी पूर्वदीप्ति (फ्लैश-

बैक) के माध्यम से फन्तासी-बिम्बों की सृष्टि करता हुआ कवि शवासन की मुद्रा में समय की धारा में बहती टिकठी को पकड़कर मुर्दा मजदूर तक पहुँच जाता है। और उसका 'वंश-चरित' लिखते हुए उसे स्वर्ग का नहीं, नरक का साक्षात्कार होता है । कवि की कल्पनाशील मनीषा नवीन उद्भावनाओं की सृष्टि करती हुई मणिकर्णिका घाट पर भी जिन्दगी के राग रचती है। जहाँ श्रमजीवी की मांसपेशियाँ छीलकर सुडौल कंगूरे उठते हैं, और उसकी जिन्दगी के निवाले निगलता हुआ मुटाता रहता है कोई बैंक-अकाउन्ट । तथा कहीं नौकरी देने के आश्वासन में रिश्तेदार की दुबली पीठ से रक्तशोषी साइफन लगाए अधिकारी अपने गाल लाल करता रहता है, वहाँ खून के रिश्ते का खून कर देने की छटपटाहट देखने लायक है । इन रक्तबीजों का खून पीने के लिए कवि को पर्याप्त शक्ति-साधना करनी पड़ती है । कवि ने स्वस्थ मन से मानवता के रोगों का रक्त-परीक्षण किया है। शोषकों का 'ब्लड-ग्रुप' जांचती और शोषितों के पक्ष में रक्तदान करती ज्ञानेन्द्र की कविता निराला और मुक्तिबोध से आगे की कविता है, जहाँ जटिल जीवन-शिल्प की अभिव्यक्ति में भाषा कुछ जटिल एवं दुर्बोध भी हो गई है। वह आज के ग्रंथिल मनुष्य का रूपक है। किन्तु आज की 'आलोचना' यदि इस भाषा को नहीं पचा पाती है, तो उसे अपने लीवर का इलाज कराना चाहिए। साहित्यिक शास्ताओं के निष्कर्षों को चुनौती देता इन कविताओं का उत्कर्ष भाषा का उत्खनन कर भाव-खनिजता और जिन्दगी की धात्विक चमक प्राप्त करता है। अर्थ-स्फोट की दृष्टि से आज के यंत्रयुग में मंत्रपूत वाणों की तरह एक से अनेक का विस्तार पाते आगे बढ़ती शब्द श्रृंखला यूरेनियम का नाभिक बन जाती है। साथ ही जीवन की चेतना भले ऊबड़-खाबड़ हो, कविता की चेतना तमाम तरंगों के बावजूद गंगाजल की तरह ही समतलीय है। भाषिक जीवन को सम्पूर्णता में जीने की दृष्टि के कारण ही न यहाँ तद्भव 'अपांक्तेय' है न तत्सम अछूत - ''ये कविताएँ जिन्दगी की धाह से अपना उजास पाती हैं। '' बाह्य स्थितियों के समानान्तर मानव-मन के भीतरी तिलिस्म को उजागर करती इन कविताओं में पराश्रव्य से लेकर 'अपश्रव्य' ध्वनियाँ तक सुनाई पड़ती हैं । उसके स्क्रूगेज का 'अल्पतमांक' बहुत कम अर्थात् मापन-क्षमता बहुत अधिक है । मानवीय उपस्थितियों में 'परकाया प्रवेश' या लोकात्मा के साक्षात्कार की प्रक्रिया में उनकी समाधि-भाषा जनपदीय अनुशासन से अभिभूत हो उठी है । बिम्बों, प्रतीकों, मिथकों का युगानुरूप संयोजन और भास्वर शब्द-संव्यूहन - सब कुछ जीवनगंधी और हृदयावर्जक है। लगता है इन कविताओं में कोई चुम्बकीय धातु स्थापित है, जो हजारों मील का दिशा ज्ञान निर्दिष्ट करती रहती है। कथाभासी ये रम्य रचनाएँ 'गंगा' में नहाकर और निखर उठी हैं। ऐन्द्रिय संवेदनाओं से उद्बुद्ध इन कविताओं में कवि के जीवन-ताप का संस्पर्श पाकर 'ढेलहवा बाबा' भी जीवित हो उठते हैं, जो कृतिकार के सांस्कृतिक अन्वेषण की उपलब्धि है । यहाँ मुझे डॉ0 कैलाश मिश्र की 'वानरेन्द्र' शीर्षक कविता याद आती है, जहाँ शहर का बन्दर गाँव पहुँच गया है और बगीचे के एक पेड़ पर बैठे शाखामृग को बच्चे ढेले मारने लगते हैं। तब वह कहता है कि प्यारे ! तुम मुझे जितना ही ढेले मारोगे, मैं ऊपर और ऊपर चढ़ता चला जाऊँगा और तुम्हारे द्वारा फेंके गए ढेले वापस तुम्हारे ही ऊपर गिरेंगे। मुझे लगता है ज्ञानेन्द्र खुद ढेलहवा बाबा हैं, जिन्हें आलोचक जितना ही ढेले मारते हैं, वे वीतक्रोध उतना ही ऊपर उठते चले जाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि कविता में प्यार पाने के आकांक्षी ज्ञानेन्द्र को क्रोध आता ही नहीं । व्यवस्था के विचलनों या समय की खरोंचों से रक्तरंजित उनके चित्त में सात्विक क्रोध या आवेश भी पैदा होता है। सम्बन्धों की ऊष्मा को सोखती कूलर-संस्कृति में एक आदमकद फ्रिज में से निकलकर घर आने वाले सबाल्टर्न नहीं, अल्ट्रामाडर्न गौरांग कुकुरमुत्ते से कवि की भेंट हो जाती है-

''जमीन से उठकर जिसका दिमाग सातवें आसमान चढ़ा
अमीरों का मुँहलगा गुलाब का गोतिया / कहा पत्नी को
सुनो, जल्द पकाओ इसे / नहीं तो कच्चा चबा जाऊँगा। ''

इस वातानुकूलित समय के तापमान को पकड़ते हुए न केवल वह बाजार की शक्तियों का साक्षात्कार करता है, अपितु तेज रफ्तार से भागते पहियों की वाहक सड़क पर वह नंगे तलवों भटकता भी है । जीवन का मर्म खोलता उनका काव्य-कर्म 'टेबुल-वर्क' नहीं है, न ही वह मनोरंजन-उद्योग का हिस्सा है। वे कविता के किसान हैं, व्यापारी नहीं। उन्हीं के शब्दों में - ''हिन्दी की गाय को खिलाने वाले और दुहने वाले अलग-अलग हैं। '' किन्तु मेढक के साथ वर्षा-मंगल गाते हुए बड़े कलात्मक सौष्ठव के साथ अमेरिका के किसी डाइनिंग टेबुल पर कवि एक ही छलांग में पहुँच जाता है, जहाँ मनुष्य के श्वसन-तंत्र की समझ ही नहीं, अप-मानवीय आस्वाद की प्रयोगशाला भी है। जहाँ उँगलियों के बीच दबी सिगरेट की लम्बाई से तय होता है सामाजिक कद-

''जब तुम लाँघ जाना चाहते हो समन्दर - यूँ ही बस खेल-
खेल में / समन्दर पार से वे बढ़ाते हैं अपना लम्बा मायावी हाथ
/ और तुम्हारे अधखुले होंठों के बीच / रखते हैं एक सिगरेट /
तुम नहीं फूँक रहे सिगरेट / सच पूछो तो एक सिगरेट कम्पनी

तुम्हें होंठों से लगाए / गाढ़े कश खींच रही है / तुम्हें फूँक रही है / सिगरेट दर सिगरेट । ''

एक सभ्यता-समीक्षक के 'अवलोकन बिन्दु' या उन्नयन कोण से पेरक्षित इन रचनाओं में पर्याप्त वैविध्य है । जिनका आस्वाद कंडीशन्ड है या जिनका उपनयन ज्यादा 'पावरफुल' या रंगीन है, वे इस काव्य जीवन के बहुरंगी चित्रपट का सौन्दर्य देखने में अपने को अक्षम पाएँगे । इन देहगंधी कविताओं में भी 'निर्गुणोपासक' आलोचक अपनी आत्मा का प्रतिबिम्ब तो देख ही लेंगे । इनके भाव-लोक में ईश्वर को पैदा करने वाले मनुष्य का अपकीर्तन और हाईटेक कुकुरमुत्ते के प्रति आक्रोश ही नहीं, जैव-विविधताओं और मिट रही प्रजातियों का मार्मिक शोक-लेख भी है । साइबेरियाई सारसों को सम्बोधित ओ-ओ आ-आ का विदागीत भी है, जो अनस्तित्व के आकाश में उड़ जाने वाले हैं । कवि ने उड़ती पत्तियों को भी अपना आकाश दिया है और विमान स्पर्धी गिद्ध-वृक्ष का भी आरोहण करता है । अपनी परछाइयों को धांगने वाले कौओं से बेखबर अपने रन वे पर हेलीकाप्टरी ढंग से उड़ान भरने वाले गिद्ध -

''जहाँ से पृथुला पृथ्वी पर / रखनी होती है उन्हें निगाह
कि वहाँ कुछ मर न रहा हो / जिन्दगी के बीचोंबीच । ''

पंख भर आकाश के आश्वासन के साथ जिन्हें उपजाया था धरती ने, जो दूर धरती के एक कसाईखाने की धुरी पर गगन मँडराते हुए विमान से टकरा जाते हैं और लहू की एक बूँद बन चू पड़ते हैं, धरती उनके लिए भी शोक करती है । हमने हाथी-दाँत उखाड़ लिए, कछुओं को कुचल डाला और

''सामन्तवाद के सीमान्त पर / घोड़े की पीठ से हम उतरे सघनच्छाय अश्वत्थ-तल / दीर्घग्रीवाक्षि समसित दशन ताम्रताल्वोष्ठजिह्व / मित्र ! लौट जाओ वन को अभयारण्यों में / जितना भी बचा है वह । ''

इसीलिए यहाँ झारखण्ड के पहाड़ों का अरण्य-रोदन सुनाई पड़ता है । वे पहाड़ जिनकी आग्नेय चट्टानें धरती की प्राचीनतम रचनाएँ हैं । तेज हवाओं में जिनकी ठोस काया में भीतर ही भीतर अभी भी बज उठता है मैग्मा-धरती का वह मूल द्रव्य-जल तरंग सा । वे पहाड़ खुद को तैयार कर रहे हैं कि -

''अब आएँगे पर्वतों के पंख काटने वाले वज्रधर इन्द्र के वंशज / बारूद की गंध फैल जाएगी हवा में / उनके टूटने की गंध के ऊपर / क्या धरा है भू में / इन भूधरों की छाँह के गुजर जाने के बाद । ''

आने वाले मौसम में मनुष्य जाति के समक्ष उपस्थित अस्तित्व-संकट की चिंता से बोझिल इन कविताओं में पर्यावरण-विनाश की अशुभ परछाइयों से बचने के लिए सूरज का तावीट्ठा बाँधा गया है । प्राकृतिक परिच्छेद के वृत्त को बिन्दु में बदलते देखकर कवि व्यथित होता है । समाज के उधड़ते सीवन उसकी आँखों में सुई चुभाते हैं । अनाथ बच्चों एवं बाल-श्रमिकों के लिए कवि अपनी ही कविता की छाती में उतरा हुआ दूध बन कर आता है । रात के अँधेरे में उसकी आँखों में जलते बुझते शब्द जुगनुओं की तरह उसके मित्र-कवियों की दिवंगत आत्माओं का पथ आलोकित करते हैं तो आले पर दिए की तरह टिम-टिम जलते बाबा भी उसे याद आते हैं, जिनके कंधों पर बैठकर कवि ऊँचा उठ जाता है । उसके भाव-पट पर अमेरिका का तैलाक्त चेहरा उभरता है तो गणतंत्र दिवस समारोह के शामियाने के बाहर तिरंगा झण्डा बेचते बच्चों का जुलूस भी उमड़ता है । युद्ध के विरुद्ध स्वाधीन साँसों का एक नगर बसाती इन कविताओं के भाव-संसार में नरकों के निर्माता पुरोहितों की पेरणा से इन्द्रपद की प्राप्ति के लिए आयोजित राजसूय यज्ञों में आत्माहुति देने वाली स्त्री के मांस की चिरायंध-गंध भी मौजूद है, जो समय के जलते सवालों का प्रतीक या बर्बर अट्टहास है और जिसे बुझाने के लिए फायर ब्रिगेड की आँखों का पानी भी सूख चुका है । आज हम मानव-

''बारूदी धुएँ से उधेड़ते वायुमंडल / खाँसती-हाँफती-काँपती मानवता किस ओर ताके ? / सड़क किनारे मंदिर में मर चुके अर्द्ध सभ्य ईश्वर की जगह चमचमाता अचूक कम्प्यूटर खड़ा है / स्कड, पैट्रियाट, टामहॉक, हेलफायर मिसाइलें, न्यूट्रान बम, न्यूक्लियर बम, हाइड्रोजन बम / इक्कीसवीं शताब्दी के प्रवेश-द्वार पर लटक रहे हैं बन्दनवारों की तरह / कि एक उन्मत्त साँड़ है संयुक्त राज्य अमेरिका / और उसका उफनता अंडकोश भर है संयुक्त राष्ट्र संघ । ''

आतिशबाजी का यह वीडियो-गेम खाते-पीतों का कितना रोमांचकारी मनोरंजन है ! कवि के भीतर के शिशु के लिए उससे कम रोमांचकारी अनुभव नहीं है प्लास्टिक के सुग्गे के हरे रंग का छूट-छूट कर आती-जाती आँखों में लगना-ललमुनिया जैसे । यहीं याद आता है हमें भी अपने गाँव का बचपन- पके आमों का सिन्दूरी रोमांच, टिकोरे और चाँदनी रात के भोर में उजालों की सन्धि-बेला में मौनी-डलिया लेकर महुआ बीनने की गंधवती उषा ।

अंत में 'दयानंद और ताजमहल' शीर्षक कविता के स्थापत्य की चर्चा करना चाहूँगा, जो संग्रह की श्रेष्ठतम कविताओं में से एक

है। इस कविता में अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा आदि सभी सिद्धियाँ मौजूद हैं। दयानन्द के हाथों में खिलौना ताजमहल कब स्फटिक के विशाल गुम्बदों में परिवर्तित हो जाता है और कब गगनचुम्बी कीर्ति वाला पेरम का उच्चतम प्रतिमान आलोचक के हाथ का खिलौना बन जाता है, पता ही नहीं चलता।

''ताजमहल ! हर शयनकक्ष की सपनीली नीली रोशनी में अनजाने मिली होती है उसकी देहाभा / जिसे देख आकर्ण खिंची प्रत्यंचा वाला एक अदृश्य धनुष थामे / अहर्निश फिजूलखर्ची को कोसने वाले उनके पिता भी चिहा उठे''

उसे घर में आया देख मस्तराम बाबा न जाने किन-किन 'छिद्रमुखों' से एक साथ बोलने लगे और शास्त्रार्थ के क्रम में-

''दरी की तरह ही जैसे खींच ली गई धरती / उनके पाँवों के नीचे से।''

और हाइफन की तरह जोड़ती लगती थी जिनके गाँजे की चिलम, उन्होंने खिलौने ताजमहल को तोड़ दिया-

'' और काँप गई हजारेक घरों वाले बड़ा सिंघनपुर के / कोई पच्चीस-तीस घरों में / चूल्हे के सिरहाने निश्चिन्त जलती हुई ढिबरी की लौ।''

प्रगाढ़ परछाईं वाले सावन-भादों के सजल मेघों की तरह बरसती इन कविताओं में विडम्बना-वक्रता और वाग्विदग्धता कूट-कूट कर भरी हुई है। अन्तर्वर्ती भाव-विनियोग और तर्क प्रवण चेतना कवि के बौद्ध व्यक्तित्व को अपने समय और समाज के प्रति संशयात्मा बनाती है किन्तु उसका मुक्तिबोध जिन्दगी का गहरा विश्वास अर्जित करते हुए स्वयं को समष्टि-लय से जोड़ देता है। अर्थ-वैभव से समृद्ध भाषा, अन्वितिपूर्ण शिल्प-संरचना, ब्यौरों की प्रामाणिकता, विचारों की स्पष्टता - हर स्तर पर ज्ञानेन्द्रपति कविता के आधुनिक पर्यावरण को पर्याप्त आश्वस्त करते हैं। शब्द-जीवन की सूक्ष्म अर्थच्छवियों के उद्घाटन, शब्दों का संदर्भानुकूल संयोजन, पात्रानुकूल भाषा-योजना, साम्य व वैषम्यमूलक अलंकारों का प्रयोग, अनुप्रास व हेतूत्प्रेक्षा का प्राचुर्य और मुहावरों की छौंक से रचना आस्वाद्य हो गई है, पर कहीं-कहीं दाल में नमक कुछ ज्यादा हो गया है। शब्दों का अतिरिक्त 'लावण्य' क्रीड़ावृत्ति का संपोषक बन गया है। समग्रतः शब्दों के आणविक विस्फोट से वैचारिक विवेक/विक्षेप की अपार ऊर्जा उत्सर्जित होती रहती है। आज की कविता का 'ब्रेन हैमरेज' न हो, इसलिए ज्ञानेन्द्रपति के भाव-लोक की यात्रा अनिवार्य है। **–कन्नौज**

देहरी पर आ बैठा एक नया साल और

नए साल में सूरज वैसे ही निकलेगा,
जिस पर कुहासे की छाया होगी,
जो अन्ततः छंटेगा।
नए साल में वैसे ही होंगी
घटनाएं और दुर्घटनाएँ,
जो कम की जा सकती हैं सावधान शिल्प में।
नए साल में भी होगा आतंक का निर्यात,
जिसके फन को बार बार कुचलना होगा।
नए साल में भी बुलडोजर नहीं होंगे बेरोजगार।
जारी रहेंगे बदस्तूर युद्ध भी,
जो नहीं बदलेंगे परमाणु - युद्ध में।
नए साल में भी वैसे ही होंगे हिमपात
शैल - शिखरों पर,
हिमनद थोड़े और पिघल जाएंगे।
नए साल में भी मेरे पास वैसे ही आएंगी अच्छी किताबें,
जो सूचीबाजों के द्वारा रह जाएंगी अनसूचित।
नए साल में भी शिविर बन्दी जारी रहेगी साहित्य की,
और कृत्रिम मेधा चुनौती होगी लेखन के लिए।
स्वाध्याय की संस्कृति की आखिरी पीढ़ी हैं हम।
नए साल में भी बिल्ली रास्ता काटेगी
और मुर्गा बांग देगा भोर में।
नए साल में भी कोई पंछी
टकराएगा किसी विमान से।
कैसे कहूँ कि सब शुभ होगा,
या बदल जाएगा ईश्वर का संविधान।
काल के अनन्त प्रवाह में विभाजन कहाँ?
हां किसी त्रासदी को हम बदल सकते हैं शोकगीत में।
संवत्सर बदलने से हमारा जीवन नहीं बदलेगा,
हमारे बदलने से संवत्सर बदल जाएगा।
किन्तु यह हमारा संवत्सर कहाँ?
छायाद्रुमों ने नहीं धारण किए नव पल्लव,
जिन किसलयों से किसी शकुन्तला के
कुन्तलों का श्रृंगार हो ।
घर में नहीं आया नवान्न।
मंजरियों से रिक्त हैं रसाल।
फिर आम से पहले हम कैसे बौरा गए!
किन्तु जब अपनाया हमने उनका सारा संविधान।
तो नवाचार में कैसा गुमान? **–अजित कुमार राय**

समीक्षा

पाब्लो नेरूदा की कविता में अन्तर्निहित जीवन का आख्यान

अजित कुमार राय

बीसवीं शताब्दी के विश्वकवि पाब्लो नेरूदा की जिन्दगी के नक्शे को फैला कर देखा तो उसके पार उनकी कविता का सारा आकाश दिखलाई पड़ा । उनकी कविता की आवाज सदी के पार सुनाई पड़ती है । वे एक संवेदनशील, जिन्दादिल, दोस्तबाज और ऐक्टिविस्ट इंटेलेक्चुअल थे । लातीनी अमेरिका के पार्श्ववर्ती ब्राजील के नीचे चीले का प्राकृतिक परिदृश्य उनकी कविता के अन्त:संगठन के लिए उत्तरदायी है, जहाँ रमणीय पर्वतमालाएँ, नील झील और घने वर्षा - वन हैं, जिनमें विचित्र पशु - पक्षी, सरीसृप और प्राचीनतम आदिवासी विद्यमान हैं। कवि का सारा जीवन एक लम्बी तीर्थयात्रा है और वह बार बार चीले की इसी पृथ्वी पर लौट आता है–

और मैं भला देशान्तरण की बात कैसे कर सकता हूँ,

अगर मेरी अस्थियाँ चीले में ही रहती हैं?

यहाँ देशान्तर की जगह जन्मान्तर भी हो सकता है । एक राजनयिक और राजदूत के रूप में फ्रांस, मेक्सिको, वर्मा, श्रीलंका और भारत - भ्रमण के बाद वैश्विक बोध के साथ वे स्वदेश वापस लौट आते हैं । एक बौद्धिक नागरिक के रूप में साम्यवाद उनका स्वदेश है । किशोर काल की उनकी प्रणय को सम्बोधित रोमानी कविताएँ भी आइसोलेशन में पैदा नहीं हुईं। जब विद्युत् पुष्प उनकी ओर बढ़ रहा था और उनके खून में कुछ बदल रहा था, उसी समय वे कामगारों के मौलिक अधिकारों के सरकारी दमन के विरुद्ध लेख भी लिख रहे थे और धरना प्रदर्शन में हिस्सा लेकर पुलिस की प्रताड़ना भी झेल रहे थे । हिटलर और मुसोलिनी की तानाशाही के विरुद्ध आक्रोश व्यक्त करने और स्पानी राष्ट्रवाद के समर्थन के कारण उन्हें बर्खास्त कर दिया गया और सन् 1941 में उनके ऊपर नात्सी समर्थकों द्वारा शारीरिक हमले भी हुए । बाद में एक भ्रष्ट राष्ट्रपति ने उनकी हत्या करवाने की कोशिश की लेकिन वे चीले से भाग निकले । एक समय ऐसा भी आया कि चीले की जनता उन्हें देश का राष्ट्रपति बनाना चाहती थी, किन्तु देश की राजनैतिक एकता के लिए उन्होंने न केवल साल्वादोर अय्येन्दे के पक्ष में अपनी उम्मीदवारी छोड़ी, बल्कि उन्हें जिताया भी । इन घटनाओं का अन्त:साक्ष्य उनकी कविता में मौजूद है–

आखिर उस चक्रवात को क्या कहा जाए,

जिसकी सक्रियता की अवधि समाप्त हुई?

जहाँ उन्होंने मुझे खोया, ठीक वहीं

क्या मैं कामयाब हुआ अन्ततः खुद को पाने में?

और कामयाब तो वे नोबेल पुरस्कार पाने में भी हुए सन् 1971 में । 23 सितम्बर सन् 1973 को लम्बे अर्से से कैंसर से पीड़ित नेरूदा की मृत्यु हो गई । क्योंकि सैनिक प्रतिक्रिया वादियों द्वारा तख्ता पलट कर 11 सितम्बर को अय्येन्दे की हत्या कर दी गई और नेरूदा यह सदमा बर्दाश्त नहीं कर सके । यद्यपि कैंसर उनके हौसले को तोड़ नहीं पाया । इसी प्रकार उनके अन्तरंग मित्र मोंखे रेल के डिब्बे से गिर कर पटरियों पर कुचल कर मौत हो गई । यह खबर उन्हें अपने पिता से मिली । शायद इसी घटना से भाव - विह्वल होकर उन्होंने लिखा था–

अपराध में शामिल रही जो मोटर कार,

उसके प्रायश्चित्त पर कौन कान देता है?

यह केवल मोटर कार के मानवीकरण का मामला भर नहीं है, स्तालिन के अमानवीय अत्याचार के विरुद्ध क्षुब्ध एक मार्क्सवादी कलाकार की करुणा का प्लावन भी है। उनकी संवेदनशील चेतना एक दुखी मनुष्य के अवलोकन - बिन्दु से जीवन के वसन्त का पर्यवेक्षण करती है–

कभी भला तुमने यह जानना चाहा

कि बीमार को अप्रैल का रंग कैसा नजर आता है?

पलट कर पूछा जा सकता है कि जो मानसिक रूप से बीमार हैं, या फिर विचारधारा के बुखार से पीड़ित हैं, उन्हें काव्य - सौन्दर्य की कैसी अनुभूति होती होगी या कविता के आस्वाद में कितना विचलन महसूस होता है? सभी सात समानार्थी नहीं होते । किन्तु उनके जन्म के एक महीने बाद माँ के देहावसान के बाद उनकी विमाता ने माता के समान ही स्नेह किया था नेरूदा को । जब नेरूदा को सौतेले देशों और विश्व भर के पाठकों का प्यार मिला तो माँ का क्या कहना! स्पानी भाषा और अंग्रेजी में अनूदित उनकी काव्य

कृतियाँ तो उपन्यास की तरह बिक जाती थीं। उन्होंने 90 काव्य - संग्रह और 14 गद्य की पुस्तकों का सृजन किया और संस्मरण भी लिखा। उनका 340 कविताओं वाला महाकाव्य 'कांतो खेनेराल' चीले का एक विश्वकोश है। उनकी आरम्भिक कविताओं में प्रयोगवाद, अति यथार्थ वाद, रहस्यवाद और शुद्ध सौन्दर्य वाद लक्षित किया जा सकता है लेकिन उत्तरवर्ती रचनाओं में वाल्ट ह्विटमैन के प्रभाव से नियोजित प्रतीकवादी विधान, रूमानियत और ऐन्द्रिक बोध को प्रगतिशील चेतना ने अपदस्थ कर दिया। टकसाली भाषा और काव्य - रूढ़ियों, छंदों को छोड़कर संबोधन शील संप्रेष्य भाषा का आविष्कार किया, जिसमें वृत्तचित्रात्मक शैली और वक्तव्यों का संपुंजन भी शामिल है। अपनी 1937 से पहले की रचनाओं को अनगढ़ या अपरिपक्व कहकर स्वयं नेरूदा ने खारिज कर दिया था। गौरतलब है कि उनका जन्म 1904 ई. में पारेल कस्बे में हुआ था। और वे सन् 1924 तक दो संग्रहों के प्रकाशन के बाद एक सनसनीखेज युवा कवि के रूप में चर्चित और स्थापित हो चुके थे। बाद में उनके ऊपर लियो टॉल्स्टॉय, दोस्तोयेव्स्की और चेखव का भी प्रभाव पड़ा। हिन्दी में उन्होंने सम्भवतः मुक्तिबोध, नागार्जुन और चन्द्रकांत देवताले को भी प्रभावित किया। प्रभावित तो पाब्लो नेरूदा ने विश्व - कविता के विनियोग को किया। उनके हिन्दी - अनुवादक हैं ---- प्रभाती नौटियाल, केदारनाथ अग्रवाल, धर्मवीर भारती, मंगलेश डबराल, विष्णु खरे और सुरेश सलिल। किन्तु उनके अपने रचना समय में आलोचक भी अवश्य रहे होंगे–

मैं क्यों दंशित हूँ भिनभिनाती मक्खियों से

और साहित्य के सार्जेंटों से?

आज के साहित्य के सार्जेंटों को भी भिनभिनाती मक्खियों का रूपक दिया जा सकता है। आकस्मिक नहीं है कि उनके काव्य संसार में मधुमक्खियों से सताए गए अन्धे व्यक्ति की ठौर हीनता उन्हें बार बार दंशित करती है। किन्तु उनका उदार सौन्दर्य शास्त्र मक्खियों की मलिन लिपि को तितली के वर्ण - वैविध्य के रूप में पढ़ लेता है–

तितली उस लिपि को आखिर कब पढ़ती है,

लिखी मक्खियों ने जो उसके पंखों पर?

पाब्लो नेरूदा का प्रश्नोपनिषद् हिन्दी भाषा के उदात्त कवि कुंवरनारायण के "बाजश्रवा के बहाने" के लौकिक जीवन - दर्शन की याद दिलाता है। तथा एक घायल हंस को बचाने का विफल प्रयास क्रौंच वध की प्रौढ़ प्रतिक्रिया के फलस्वरूप शोक के श्लोक में रूपांतरण की आन्तरिक घटना के रूप में आदि काव्य रामायण के संघटन की स्मृति को ताजा कर देता है। आज कविता के अन्तर्पाठ की बहुलता और अराजकता को निरस्त करते हुए कवि के अभिप्राय को जानने और कविता को गहराई से समझने का सूत्र या निकष इस नवाचार में न्यस्त है–

कभी एक उंगली भी मेरे खून में न डुबोने वाले

क्या कहेंगे मेरी कविताओं के बारे में?

वे तो कविता के आशय का खून ही कर देंगे, जिन्होंने कवि के व्यक्तित्व और कृतित्व का गहरा अनुशीलन नहीं किया, उसके मानससर में डूबे नहीं, भावलोक का अवगाहन नहीं किया, वे कविता को ही डुबो देंगे। आज मार्क्सवादी चिन्तन के आलोक में रामचरितमानस का अध्ययन ऐसी ही विसंगति पैदा करेगा। यदि उसके मूल सत्व को बचाया नहीं गया। सत्य को उसके मूल अक्ष पर बेधने की रचनात्मक कोशिश और उसे सामाजिक कार्यभार देने की उद्यमिता नेरूदा के सांस्कृतिक सृजन को कालजयी बनाती है।

हड्डियों के गल - सड़ जाने के बाद भी यदि नेरूदा पृथ्वी की खाक - धूल में जिन्दा हैं, तो इसके लिए उनके काव्य की जीवंतता, ताजे बिम्ब, अनश्वर अर्थ - संवेदना, स्फटिक विन्यास की धवलिमा, रूमानियत, रहस्यवाद, प्रश्नोपनिषद् की भंगिमा, बाल सुलभ अनन्त जिज्ञासा, कहन के अनछुए तेवर और छंद के अनस्तित्व में अन्तर्लय की उपस्थिति तथा काव्यार्थ की सान्द्रता उत्तरदायी है। आज सघन रसात्मक अनुभूति के बिना जो विचार - काव्य लिखे जा रहे हैं और कविता के नाम पर गद्यब्राण्ड सिंथेटिक संरचना का थोक उत्पादन हो रहा है, उन्हें नेरूदा से सीखने की जरूरत है। सन् 1929 ई. में भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन में जब नेरूदा एक राजनयिक पर्यवेक्षक के रूप में भारत आए थे, तब उन्होंने महात्मा गॉधी, जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस को समीप से देखा था। वह हिन्दी में छायावाद युग का उत्कर्ष - काल था। यद्यपि 'कामायनी' सन् 1936 ई में लिखी गई थी जो आधुनिक युग का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है। स्वाधीनता आंदोलन की समझ रखने वाले नेरूदा की भले ही हिन्दी कविता से अन्त:क्रिया न हुई हो, किन्तु वे हवाओं की भाषा पढ़ लेते थे। वैसे सुप्रसिद्ध अमेरिकी कवि राबर्ट ब्लाइ के साथ नेरूदा ने कबीर का अनुवाद भी अंग्रेजी में किया था। उसी समय हिन्दी कवि प्रश्नवाची मुद्रा में लिख रहे थे–

कौन तम के पार रे कह!

न जाने नक्षत्रों से कौन

निमंत्रण देता मुझको मौन?

इस मौन निमंत्रण को नेरूदा की प्रश्नवाची कविताओं में पढ़ा जा सकता है–

क्या मेघों का कोई कलेक्टर तैनात है,

कोलम्बिया के ऊपर, आसमान में?

कैसे भला जान पातीं यह बात जड़ें,

उन्हें प्रकाशोन्मुख पथ पर चढ़ना होगा?

जो समूचे ब्रह्माण्ड का अनुशास्ता है, जिसके सुपर प्रशासन में सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह अपनी कक्षा में गतिमान हैं, जो सारे दृश्य के पीछे अदृश्य रूप में वर्तमान है, जो ऋतुओं का नियामक है, उसकी आभासी अनुभूति या रहस्यवाद को नकारना कहाँ तक समीचीन है? यह लौकिक अध्यात्म जैसा कुछ है, जिसे प्रगतिशील आलोचक खारिज करते हैं और लौकिक दर्शन की संज्ञा देते हैं। यद्यपि यह तर्क उनके भौतिक जीवन - दर्शन के मेल में है–

मेरे बीअर के कूजे से फिसलते हुए झाग की

पैमाइश कैसे की जाए, भला?

अब यदि यह कविता की मदिरा का नशा है तो वरेण्य है, अन्यथा जीवन - काव्य में झाग के सिवा कुछ नहीं छोड़ेगा। सुना है कि पीते तो गालिब भी थे और देवता भी सोमरस पीते थे। आज तो प्रायः साहित्य के सभी श्रद्धेय द्राक्षासव में डूबे रहते हैं और आमिषभोगी हैं तो उनसे निरामिष चिन्तन की आशा कैसे की जा सकती है! रक्तहीन क्रान्ति में इन कामरेडों का विश्वास नहीं। यह अलग बात है कि ये सिर्फ काठ की तलवारें भांजते हैं। अपने नशे में निमग्न इन्हें पता ही नहीं है कि कोई पाठक इनके आस पास बचा भी है कि नहीं! पाश्चात्य भोगवादी जीवन - दृष्टि का दूसरा उदाहरण नेरूदा की निम्नलिखित कविता है–

सचमुच बेलिबास है गुलाब? बोलो,

या फिर उसने वैसे ही परिधान पहन रखे हैं।

शरीर में चिपके हुए और देह की ही रंग के कपड़े फैशन माडल के रूप में भारत में भी अपना लिए गए हैं। गुलाब के घाघरों की गणना कोई काराकास सुन्दरी कैसे कर सकती है! तब नग्नता का प्रदर्शन था, अब तो सुन्दरियां नग्न हो गई हैं। न्यूनतम वस्त्र - विधान शायद स्वतंत्रता का द्योतक है। स्त्री विमर्श की देहवादी स्वाधीनता पुरुष के लिए शुभ लाभ का स्वर्ण पिंजर उपलब्ध कराता है। स्त्री विमर्श के पैरोकार राजेन्द्र यादव पुरुष विमर्श के शिकार हो गए और अपनी ही पत्नी मन्नू भंडारी को न्याय नहीं दे पाए। नेरूदा ने अपने प्रेम तथा दैहिकता पर निःसंकोच खुले ढंग से लिखा, जिस पर कुछ आलोचक भड़के भी, किन्तु ऐन्द्रिक निवेश के साथ ही नेरूदा ने अपने आस पास की चीजों को संश्लिष्ट करके विचारों का एक संसार रचा था जो पाठकों तक संप्रेषित हुआ। वैसे ओशो का यह कथन समीचीन है कि हम अपने सामने महावीर स्वामी की तरह नंगे हो जाएं और अपने काम का ईमानदारी से साक्षात्कार करें, तभी राम की यात्रा शुरू हो सकती है। यद्यपि नेरूदा यह स्वीकार करते हैं कि वृक्ष अपनी जड़ों का वैभव छिपाते हैं, प्रदर्शित नहीं करते। ठोस क्रिस्टल की भांति तराशे गए बिम्ब और नूतन मौलिक उद्भावना उनके काव्य के धातु गत वैशिष्ट्य हैं–

किसे देख - देख, चावल मुस्कुरा रहा,

अपने असंख्य झक् सफेद दांतों से?

"चांद का मुंह टेढ़ा है" के बरक्स चावल की यह धवल स्मिति कितनी स्पृहणीय है! मानवीकरण और मानवीय विकृति में कितना फर्क है! परम्परागत सौन्दर्य बोध के निषेध की आत्यंतिक परियोजना कविता को लोक जीवन से दूर कर देती है। किन्तु इस अन्तर्यथार्थ को अतियथार्थवाद कैसे समझ सकता है?

अगर मैं मर चुका हूँ, और इससे अनभिज्ञ हूँ,

तब भला किससे जाकर यह पूछूँ मैं?

और यदि आत्मा मुझसे दूर जा छिटकी है,

तो एक कंकाल क्यों पीछा करता रहता है मेरा?

आत्महीनता की लिपि आत्मवान् भाषा को कैसे व्यक्त कर सकती है! संवेदनात्मक मृत्यु या व्यक्तित्व के फांक को इससे बेहतर कैसे व्यक्त किया जा सकता है? सिद्धान्त और आचरण का यह द्वैतवाद आज की मानवीय नियति है। इस यथार्थ को नेरूदा ने आत्मपरक शैली में व्यंजित किया है। प्रश्नाकुलता सिद्ध करती है कि अभी कवि के भीतर एक बच्चा बचा हुआ है। और बचा हुआ है जिन्दगी का नमक भी–

यदि सारी नदियाँ मीठी हैं,

तो समुद्र अपना नमक कहाँ से पाता है?

यह निरलंकृत चमत्कार तत्त्व ही नेरूदा की कविता का प्राण है। उनकी कविता की तृणमणि में जलपरियों के आंसू जज्ब हैं। दूब पर शबनम की बूंदों में करुणा का निवेश एक भिन्न सौन्दर्य शास्त्र की सृष्टि का प्रस्ताव करता है। उनकी अलहदा दृष्टि सवाल करती है–

क्या शीबा की साम्राज्ञी के जिस्म में

बैंगनी रंग का खून बहता था?

जबकि महादेवी वर्मा मानवीय संवेदनों की सार्वभौमिक एकता का प्रतिपादन करती हैं–

सब आंखों के आंसू उजले,

सबके सपनों में सत्य पला।

करुणा सर्वाधिक द्रावक मनोभाव है। नेरूदा हर हिटलर से तीखे सवाल पूछते हैं–

क्या वह लाशों को रंगता है या दीवारों को? / क्या वह नराहुति की गैस में सांस लेता है ?

"दीवारों पर खून से" (चंद्रकांत देवताले) अधिनायकवाद की जो इबारत लिखी गई, नेरूदा उसे प्रश्नांकित करते हैं–

किस पश्चिमी राजतंत्र का ध्वज

अफीम के फूलों से रंगा जाता है?

प्रश्न परक शैली में सत्ता की आलोचना अवगुंठन के भीतर से प्रतिभासित होती है तो उसकी दृष्टि से कुछ देर और दूर तक बचा जा सकता है। क्योंकि संघर्ष से थकान होती है और नेरूदा की परवर्ती कविताओं में विषाद और चिन्तन की रेखाओं को पढ़ा जा सकता है। जीवन और मृत्यु के प्रश्नों से भी नेरूदा ने मुठभेड़ की है। सत्ता को शक्ति के अहंकार का नशा तो होता ही है। तभी तो नेरूदा पोस्त के लाल फूलों के रेशम में भी जोखिम देखते हैं। शरद ऋतु में धरती की जुगाली, पीले विस्फोट को देख कर नेरूदा के मन में सवाल उठता है कि ऋतुओं को कैसे पता चलता है कि कमीज बदलने का वक्त आ पहुंचा है। उड़ते वक्त कौन सी चिड़ियां झुण्डों का क्रम तय करती हैं? और चांदनी रात में पंछियों और मछलियों को निरखते हुए वे एक चाक्षुष बिम्ब गढ़ते हैं–

चन्द्रमा के जालों में छटपटाती हुई, वे मछलियाँ हैं कि चिड़ियां?

राकेश की रश्मियों या ज्योत्सना के संजाल में उद्भासित मीन माला और विहग समूहों का सिमट आना अज्ञेय के 'बावरा अहेरी' की याद दिलाता है। आखेटक और जालिक सूर्य जब संध्या के समय अपनी लाल - लाल किरणों को समेटता है तो उसमें पतंगें, रंग - बिरंगे डैनों वाले पंखी, वृक्ष और विद्युत के खंभे सब कुछ फंस जाते हैं। सब कुछ अन्धकार के गर्भ में समाहित हो कर निराकार उपस्थिति में पर्यवसित हो जाता है। नेरूदा जीवन को दो धुंधली सी स्पष्टताओं के बीच एक सुरंग के रूप में देखते हैं और मृत्यु को अनस्तित्व से कुछ अधिक और खतरनाक प्रत्यय के रूप में। वे चट्टानों के भीतर सलवटें और गड्ढे गौर से देखते हैं। उनके जीवन में कितनी सलवटें हैं, कौन गिनेगा? उनके काव्य - जीवन में एक औदात्य मौजूद है। वे जग - जीवन के अमर शिल्पी हैं। कल्पना का नवोन्मेष और भाषा लालित्य और नवाचार स्पृहणीय और ईर्ष्या जनक है। एक कालजयी कवि की कला के अभिनन्दन में मेरी वाणी भी उत्सव धर्मी हो गई। सारस्वत मेधा किसी भी रूप में वन्दनीय है। **–कन्नौज, मो. 9839611435**

अजित कुमार राय

पुत्र : श्री दीनानाथ राय

जन्म तिथि : 17/10/1967

काव्य - कृतियाँ : आस्था अभी शेष है, रथ के धूल भरे पांव (संपादित) : सर्जना की गंध लिपि

आलोचना कृति : नई सदी की हिन्दी कविता का दृष्टि बोध।

आलोचना, नया ज्ञानोदय, वागर्थ, हंस, अक्षरा, साक्षात्कार, साहित्य अमृत, वीणा, पाखी, परिकथा, कथाक्रम, दोआबा, आधुनिक साहित्य, साहित्य भारती, शब्दिता, सम्मेलन पत्रिका (प्रयागराज), समीक्षा, दस्तावेज, नूतन कहानियाँ, निकट, लहक, समय सुरभि अनन्त, समकालीन सोच, अक्षर पर्व, अभिनव इमरोज आदि पत्रिकाओं तथा जनसंदेश टाइम्स, आज, सहारा समय, दैनिक जागरण आदि समाचार - पत्रों में रचनाएँ प्रकाशित।

अनेक संकलनों में निबन्ध, कविताएँ और आलोचनाएँ प्रकाशित।

पूर्व प्रधानाचार्य : सुभाष इण्टर कालेज, नेरा, कन्नौज

पता: विमर्श, विष्णु पुरम् कालोनी, नयी कचहरी रोड, सरायमीरा, कन्नौज (उत्तर प्रदेश)

पिन : 209727

मो. 9839611435

समीक्षा

पंत: प्रकृति की अनन्त सृजनशीलता

अजित कुमार राय

आज मुझे पंत जी का 'मौन निमंत्रण' मिला है । ताजमहल को मृत्यु के अमर अपार्थिव पूजन के रूप में देखने वाले सुमित्रानंदन पंत आलोचकों के लिए हमेशा अबूझ रहे । उनकी सतत विद्रोहशील गतिशील बौद्धिक चेतना को प्रगतिशील आलोचना आत्मसात नहीं कर सकी । गौरतलब है कि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ताजमहल को काल के कपाल पर ठहरे हुए अवदात आंसू के रूप में देखा है । उनकी प्रलम्बित कविता के स्थापत्य में करुणा का सौन्दर्य केन्द्रस्थ है। किन्तु पंत जी को लगता है कि जिस भारत में वासविहीन और क्षुधातुर वंचित जनों का जीवन निर्जीव और विषण्ण पड़ा हो, जीवन के प्रांगण को कंकाल से भर देना अश्लील पाप है। किन्तु समूचे मानव - संघर्ष को वर्ग - संघर्ष में रिड्यूस कर देने के वे कायल नहीं हैं। इस प्रकार वे किसी भी वाद में आबद्ध होकर चलने वाले बुद्धि जीवी नहीं, एक स्वतंत्र चेता स्रष्टा हैं। वे जीर्ण पुरातन के अन्त और विनाश की पृष्ठभूमि पर नवयुग के निर्माण और विकास के भविष्य - द्रष्टा हैं–

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र, हे स्रस्त - ध्वस्त! हे शुष्क शीर्ण! / हिम - ताप पीत, मधुवात भीत, तुम वीतराग, जड़, पुरा चीन!!

इसलिए द्विवेदी युग की कविता की बाह्यार्थ प्रसंग वाली इतिवृत्तात्मक और स्थूल वर्णनात्मक संरचना के विरुद्ध छायावाद अनुभव - संस्थान के सूक्ष्म प्रत्ययों को भाषा की अन्तर्मुखी अभिव्यंजना का मार्ग चुनता है । वह भक्ति - काल के रूढ़िबद्ध जीवन - मूल्यों और सार्वभौमिक प्रपत्ति भावना से भी मुक्ति चाहता है । वह केवल रोमैंटिक, मांसल और भावना - प्रधान व्यक्ति मूलक काव्य नहीं है । उसका सम्पूर्ण भावपट आधुनिक है और वह संकीर्ण राष्ट्रवाद का अतिक्रमण कर विश्व मानवतावाद के नए ऐतिहासिक बोध से लैस है। वह भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि में विकसित होने के कारण एक ओर मनुष्य के आत्म परिष्कार और उसके चैतन्य शक्ति के विकास की अन्त:प्रेरणा से परिस्फूर्त है तो दूसरी ओर देश की पददलित जनता के दैन्य और उसकी दुर्दशा के प्रति एक सात्विक आक्रोश से आविष्ट है। समासत: वह प्रकृति के शीतल क्रोड़ में जीवन से पलायन नहीं, अपने मधुमय देश के प्रति दायित्व बोध से परिस्फूर्त विश्व जीवन की संश्लिष्ट संरचना है। पंत जी कहते हैं–

मैं जग - जीवन का शिल्पी हूँ, जीवित मेरी वाणी के स्वर,

जन मन के मांस खण्ड पर मैं मुद्रित करता हूँ सत्य अमर।

जीवनानुभव की अनेकमूल गहराइयों को वाणी देना और शब्द के अर्थतंत्र को बाह्य विधानों से भीतर की ओर मोड़ देना किसी दूसरे दर्जे के चमत्कार प्रिय कवि के वश का नहीं है। दूधनाथ सिंह के शब्दों में "यह भाषा के सम्पूर्ण तंत्र को उलट देने की क्रिया है। " दूधनाथ सिंह ने पंत जी के काव्य - विकास पर सर्वाधिक सहृदयता से विचार किया है । प्रकृति की रमणीय चित्रमयता में संगोपन प्रेम और आत्म - प्रबोध को संगुम्फित करके भाषा में दुहरे अर्थों का संयोजन पंत की छायावादी काव्य को महत्वपूर्ण देन है। वैयक्तिक निर्वैयक्तिकता की धुरी पर घूमती पंत - काव्य की पृथ्वी की वस्तुवादी चेतना का सम्पूर्ण परिवेश भारतीय है। यहाँ प्रकृति का मानवीकरण और मानव का प्रकृतिकरण तो है ही, शब्दों को विभिन्न क्षेत्रों से ग्रहण कर उन्हें स्थूल के बजाय सूक्ष्म अर्थों में नियोजित कर पंत जी ने भाषा का एक नया अर्थ- संस्कार किया है। प्रभावशाली अर्थ बंध और कल्पना की भावोच्चता के साथ ही 'बादल' जैसी कविताओं में मूर्त और अमूर्त उपमानों की श्रृंखला ध्यानाकर्षक है–

धीरे धीरे संशय से उठ, बढ़ अपयश से शीघ्र अछोर,

नभ के उर में उमड़ मोह से, फैल लालसा से निशि भोर।

बादल को सागर का धवल हास, अनिल फेन, वारि - वसन, जल के धूम, गगन की धूल कहना सर्वथा नवीन कल्पना है। पंत ने बादल को इतने रूपों में देखा है कि आश्चर्य होता है। प्रकृति के सुकुमार कवि ने मिथ तोड़ दिया है–

कभी अचानक भूतों का सा प्रकटा विकट महा आकार,

कड़क - कड़क जब हंसते हम सब, थर्रा उठता है संसार।

दुहरा विद्युद्दाम चढ़ा द्रुत, इन्द्रधनुष की कर टंकार,

विकट पटह से निर्घोषित हो, बरसा विशिखों सा आसार।

नग्न गगन की शाखाओं में फैला मकड़ी का सा जाल,

अम्बर के उड़ते पतंग को उलझा लेते हम तत्काल।।

इन्द्रधनुष पर विद्युत् की डोरी चढ़ा कर बाण - वर्षा करने और मकड़ी के जाल में सूर्य को कीट पतंग की तरह उलझा लेने में पंत की कल्पनाशील मनीषा और नवोन्मेषी विराट प्रतिभा के दर्शन होते हैं। एक ही कथ्य को अनेक बिम्बों के माध्यम से व्यक्त करने में अनुभव की व्यापकता का प्रमाण मिलता है। उनके काव्य - संसार में सूक्ष्म अनुभूतियों की विवृति संवेद्य ऐन्द्रिय बिम्बों और व्यंजना धर्मी लाक्षणिक भाषा के द्वारा सम्भव हुई है । आंचल में छिपे दीप - ज्योति की तरह अर्थच्छाया का आभास ही छायावाद का मूलगामी धातुगत वैशिष्ट्य है। कनक किरण के अन्तराल में लुक - छिप कर संचरण करने का शालीन सौन्दर्य बोध अलक्षित रह जाने के कारण ही इस कालखण्ड को व्यंग्योक्ति के रूप में यह नाम दिया गया था। अपने परिवार और पड़ोस को फैला कर विश्वव्यापी सन्दर्भ प्रदान करने की प्रविधि भाव - संवेदना के वृहत्तर आयामों का उद्घाटन करती है। इसे भावोच्छ्वास के रूप में अपघटित करना कलात्मक न्याय नहीं है। मेरे गुरु देव डा. अवधेश प्रधान ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में मुझसे कहा था कि छायावादी भावबोध से बाहर आइए। मुझे आज तक समझ में नहीं आया कि छायावादी काव्य - शिल्प केवल फूलों, तितलियों और विहगों की वायवीय उड़ानों या फिर शबनम की बूंदों में कैद है! 'परिवर्तन' की त्रासदी और विश्रृंखल युग में मानवीय नियति को सहस्राब्दियों के विशाल फलक पर रूपायित करना क्या आम कवि के बूते का है? संवेदना के आरोह - अवरोह के अनुसार वर्ण और मात्राओं को घटा - बढ़ा कर सामासिक शैली में छंद - परिवर्तन के साथ काल के कठोर सत्य के साक्षात्कार का अनूठा उदहारण है यह कविता। यह क्लासिक कविता विश्व के किसी भी बड़े कवि की बड़ी कविता से होड़ ले सकती है–

अहे वासुकि सहस्र फन!

लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर,

छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर!

शत शत फेनोच्छवसित स्फीत फूत्कार भयंकर,

घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर,

मृत्यु तुम्हारा गरल - दंत, कंचुक कल्पान्तर,

अखिल विश्व ही विवर,

वक्र कुंडल

दिग्मंडल!

पंत की काव्य धारा में होने वाला सतत परिवर्तन आलोचना के लिए अलक्षित रह गया। सौन्दर्य - चेतना, बौद्धिक प्रगतिशील चेतना, भू - चेतना और सूक्ष्म अतिमानवीय चेतना तक और लाक्षणिक व्यंजना की अन्यतम गहराइयों से अपेक्षाकृत अभिधा के प्रसन्न प्रसार तक पंत की कविता का अन्त:सलिल विकास संलक्ष्य है। सबका समाहार 'लोकायतन' की विराट पारदर्शी दृष्टि - सत्ता में। महान काव्य और किसे कहते हैं! कभी 'छायावाद' के प्रशंसक रहे नामवर सिंह को लगता है कि पंत का कवि अन्वेषण की नयी जमीन न तोड़ कर अपनी सहज - सुलभ अभ्यस्त शैली में लिखता चला जाता है। शायद इसीलिए उन्हें पंत - काव्य का एक चौथाई कूड़ा लगता है और लगे हाथ उनके बौद्धिक अनुचर सदानंद शाही को रामचरितमानस का एक हिस्सा कूड़ा लगने लगा। यह बिना विचार किए कि उनके लेखन का कितना हिस्सा सार्थक है! कि उनकी सर्वाधिक सशक्त रचना गोस्वामी तुलसीदास जी की सबसे कमजोर चौपाई पर न्यौछावर हो जाएगी। एक बार यज्ञ के अनुष्ठान में मानस - सम्मेलन आयोजित किया गया था। सूर स्वामी और गौरीशंकर जी के बाद ज्योत्स्ना जी बोलने के लिए मंच पर आईं तो मैंने संचालन करते हुए कहा कि सुधी सज्जनों! अब एवरेस्ट और गौरीशंकर की चोटियों पर पड़ने वाली है ज्योत्स्ना की शीतल सुमधुर छाया। मैं विदुषी वक्ता को इस भाषा में आमंत्रित करता हूँ–

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार चकित रहता शिशु सा नादान, / विश्व की पलकों पर सुकुमार विचरते हैं जब स्वप्न अजान, / न जाने नक्षत्रों से कौन निमंत्रण देता मुझको मौन!

पंत जी आकाश गंगाओं के छायापथ में आघूर्णनशील ध्रुव तारा हैं। आकस्मिक नहीं है कि इस रहस्यवादी चेतना से पृथक उनका ज्योतित विवेक 'एक तारा' को स्वर्णाकांक्षा के प्रदीप के रूप में देखता है और गंगा के चल - जल में किरणों के रक्तोत्पल के कुम्हला जाने के बाद, जबकि तरु - शिखरों से स्वर्ण विहग (सूर्य)

अपने सुभग पंख फैला कर उड़ गया है किसी अदृश्य गुहा - नीड़ में तथा पत्रों के आनत अधरों पर निखिल वन का मर्मर सो गया है, एकाकीपन के दुस्सह अन्धकार का भार सहते नक्षत्र में अपना प्रतिरूप खोजते पंत स्थितप्रज्ञ यथार्थ का साक्षात्कार करते हैं। मर्मर ध्वनि, स्वप्निल, फेनिल जैसे तमाम शब्दों का निर्माण करते हुए पंत ने एक अस्पर्शित कोमल कान्त पदावली से युक्त समरस भाषा का आविष्कार किया। नामवर सिंह को कामायनी की भाषा ढोकदार लगती है। 'नौका विहार' करते हुए भी पंत की दार्शनिक अनुभूति सजग रहती है–

इस धारा सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम।

यह गंगा के गहरे पानी में डूब कर लिखी गई कविता है। इसमें सौन्दर्य - चेतना और भाव - चेतना का संश्लेषण अद्भुत कल्पलोक की सृष्टि करता है। यहाँ तरल जल में चांदी के सांपों सी रलमल रश्मियाँ ही नहीं नाचतीं, नीरव अपलक नयन आकाश का ओर - छोर हिल पड़ता है। दो बाहों से दूरस्थ तीर धारा के कृश कोमल शरीर का आलिंगन करते हैं तो दशमी का चांद लहरों के घूंघट से अपना तिर्यक् मुख मुग्धा नायिका सा रुक रुक कर दिखलाता है। साड़ी की सिकुड़न सी लहरों की नील विभा के परिशान्ति - बिन्दु पर जल में प्रतिबिंबित सैकती पुलिन क्षण भर के लिए दुहरी ऊंचाई प्राप्त कर लेते हैं। क्षणबद्ध अनुभूति की अपरिमेय ऊंचाई यहाँ देखते ही बनती है। इस प्रकार पंत जी की इस काल की कविता शिल्प तंत्र, भाषा, शब्द, लय और कथ्य की एकान्विति में सम्पूर्णत: गुंथी हुई है। चाक्षुष बिम्ब का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

मृदु मंद मंद, मंथर - मंथर, लघु तरणि हंसिनी सी सुन्दर,
तिर रही खोल पालों के पर।

जीवनानुभव और कल्पना की तरंगों से घिस - घिस कर शब्द स्निग्ध या चिकने हो गए हैं। सुबह और शाम की छाया लोभ सी लम्बी होती है और पंत की भाषा की परछाईं भी बहुत लम्बी है। उपचार वक्रता के साथ शब्दों के अर्थ पूर्ण विन्यास से बहुस्तरीय ध्वनि वाली भाषा का ऐसा रचाव, जिसमें मिथकीय और सांस्कृतिक सन्दर्भों को संग्रथित करते हुए बिम्ब माला का निर्माण निहित हो, विरल है। 'उच्छवास' शीर्षक कविता में पर्वत प्रदेश में पावस की पृष्ठभूमि में कल्पना की कल्पलता उस सरल मित्र बालिका के मृदु अधरों पर मंदहास सा मंडराते हुए पंत जी अपनी अभिलाषा को ध्वनित करते हैं–

गिरिवर के उर से उठ - उठ कर,
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर,
हैं झांक रहे नीरव नभ पर।
उड़ गया अचानक लो, भूधर,
फड़का अपार वारिद के पर,
धंस गए धरा में सभय शाल,
उठ रहा धुआँ, जल गया ताल।

यह हेतूत्प्रेक्षा और सौन्दर्य के स्थिर और गत्वर बिम्ब कविता की उच्चाकांक्षाओं के प्रतीक हैं। ये प्रसाद जी के प्रलय के मेघों की याद दिलाते हैं–

दिग्दाहों से धूम उठे, या जलधर उठे क्षितिज तट के?
सघन गगन में भीम प्रकम्पन, झंझा के चलते झटके।

यहाँ भाव - साम्य या अनुभूति - सादृश्य की छाया द्रष्टव्य है। वृक्ष को पर्वत की उच्चाकांक्षाओं के रूप में देखना अन्तर्मुखी अभिव्यंजना का द्योतक है। हम इस आकांक्षा को नष्ट करते जा रहे हैं। जब भू से भूधर की छांह गुजर जाएगी तो पर्यावरण विहीन समय में पंत की कविता कैसे समझ में आएगी? तब धरती निस्सार हो जाएगी। इस अभिजात प्रकृति के अतिरिक्त पंत जी ने ग्राम्य जीवन और प्रकृति का भी पूरी तन्मयता से साक्षात्कार किया है।

मरकत डिब्बे सा खुला ग्राम,
जिस पर नीलम नभ आच्छादन।
लहलह पालक, महमह धनिया।
उड़ती भींनी तैलाक्त गंध, फूली सरसों पीली - पीली।

इस प्रकार दूधनाथ सिंह ने सुमित्रानंदन पंत को सम्पूर्णता का कवि कहा है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी जी ने उनके ऊपर एक पुस्तक लिखकर उनकी अभ्यर्थना की है। 'युगान्त' में मानो छायावादी युग का अन्त कर देने वाले पंत जी के भीतर क्रान्ति की तीव्र चेतना आन्दोलित होती है और उनका कोकिल अपने गीतों में पावक की वर्षा करने लगता है। 'ग्राम्या' में वे प्रगतिशील सोच के साथ कविता के गाँव में प्रवेश करते हैं। 'लोकायतन' में गांधीजी और पुरुषोत्तम श्रीरामचंद्र उनके आत्मान्वेषण के निमित्त बनते हैं। पंत जी प्रभाकर श्रोत्रिय की तरह सुदर्शन व्यक्तित्व से सम्पन्न हैं और सौन्दर्य कोई पाप नहीं है। समग्रता में लोकमंगल की सनातन अवधारणा उनके काव्य में आद्योपांत अनुस्यूत है। उनका काव्य - वैभव वाकई ईर्ष्या करने लायक है। पंत प्रकृति की अनन्त सृजनशीलता के पर्याय हैं। वे हिन्दी में प्रकृति के पुरोहित भी हैं।

–कन्नौज (उत्तर प्रदेश) मो. 9839611435

समीक्षा

नई सदी की जनगीता...

अजित कुमार राय

कानपुर गीतनगर है, ठीक काशी और प्रयाग की तरह। अवध बिहारी श्रीवास्तव, वीरेन्द्र आस्तिक और शैलेन्द्र शर्मा जैसे नवगीतकार प्रियंवद और पंकज चतुर्वेदी के शहर में रसवंती सांझ की सोनकिरन हैं। शैलेन्द्र शर्मा समग्र जीवन - बोध के अध्वर्यु हैं। उनके गीतों में हमारे रचना - समय की श्वेत - श्याम छवियां अंकित हैं। प्रेम, प्रकृति और मानव - प्रकृति एक सांस्कृतिक परिवेष्टन में उद्भासित होते हैं। किन्तु समकालीन परिवेश के अन्तर्विरोध और राजनैतिक विडम्बना के अंकन में कवि को अधिक सफलता मिली है। उनके नागर मन में प्रखर लोकचेतना कसमसाती रहती है और उनका सृजन जन के तिलकोत्सव में आशीर्वचनों के लिए आमंत्रित अभिजन का ऋचा - पाठ है। उनके काव्य - संसार में तत्सम के पड़ोस में तद्भव की आत्मीय उपस्थिति संलक्ष्य है। उनकी काव्य भाषा में एक प्रासादिकता आद्यन्त मौजूद है। उनके लेखन में समय और समाज की सांवली सचाइयां दर्ज हैं। वैज्ञानिक तर्क चेतना से संवलित उनके गीत उत्तर आधुनिक सृजनशीलता के लिए पाथेय हैं। यथार्थ के सार्वजनीन सन्दर्भों की आत्मगत पीड़ा का साक्षात्कार वे ऐतिहासिक विवेक के साथ करते हैं। सामाजिक और सांस्कृतिक विद्रूपता और जन गण मन की समस्याओं तथा उत्पीड़न के प्रति प्रच्छन्न प्रतिरोध के शालीन शिल्प का आविष्कार उनके गीतों को जनगीत से अधिक जनगीता बना देता है। जीवन और जगत की आलोचना से संस्फूर्त उनके गीतों में काव्य भाषा और आलोचना - भाषा का फर्क मिट गया है। बड़े बड़े सांस्कृतिक प्रश्नों को हल करने के बजाय लघु मानव की छोटी छोटी समस्याओं को आलोकित करने के प्रयास में लघु छंदों का प्रयोग उनके संरचनात्मक वैशिष्ट्य को औचित्य प्रदान करता है। समृद्ध जीवनानुभव और शास्त्रानुभव का संश्लेष उनके गीतों की दीप्ति को द्विगुणित कर देता है। वे रामधनी और रहमत के बीच जोड़ के कायल हैं, जबकि जोड़ - तोड़ की राजनीति इनके बीच से समास चिह्न को हटा देती है–

थैली के हैं चट्टेबट्टे, ऊपर - ऊपर तना - तनी,

पर इनके झांसे में आकर लड़ते रहमत - रामधनी।

राजनीतिक दल आपस में आभासी युद्ध करते हैं और दुलत्ती पड़ती है जनता पर। ये पार्टियां सत्तालोलुप अवसरवादी मनोवृत्ति के कारण वक्त पड़ने पर कट्टर शत्रु को भी गले लगा लेती हैं। गौरतलब है कि आज राजनीतिक निहितार्थ के कारण धार्मिक कट्टरता दिनोदिन बढ़ती ही जा रही है। सच है कि चमगादड़ तो उल्टे ही लटकेंगे। अंधकार के वंशज तो तम ही बांटते हैं। ये सूरज को भी ढंग बदलने की धमकी देते हैं। ये खुद चेहरे पर मुखौटे लगाकर दूसरों के मुंह पर कालिख पोत देते हैं। चिरागों से लौ की जगह धुआँ निकल रहा है। खेत हमारा है, लेकिन इंच - इंच पर उनका कब्जा है। जमीन - कुदाल हमारी है किन्तु डालर उनके हैं। इन खाते - पीते लोगों के खाते स्विस बैंकों में उनकी देश - भक्ति का प्रमाण हैं। राम कंचन मृग के पीछे भाग रहे हैं और उनका हवामहल युवाओं के लिए रोजगार का सृजन किया करता है। प्रजा की आंखें बहुत जतन से बन्द कर दी गई हैं–

पैरों में गोरक्षक जूते, गले पड़ी रुद्राक्ष,

भक्त जनों के ब्रह्म रंध्र के करता बंद गवाक्ष।

कापालिक की श्मशान - साधना से भोथरी संज्ञाओं का घनत्व नित्य बढ़ता जा रहा है और कागजी कमीशन आपराधिक घटनाओं की जांच करते रहते हैं। आंकड़े अच्छे दिन आने की गवाही देते हैं। विराट विष्णु गहन योगनिद्रा में हैं और बौने होते मनुष्य में उन्हें जगाने का नैतिक साहस नहीं है। इन्द्र शेष जगत को भूल कर इन्द्रप्रस्थ में ही व्यस्त हैं। अपनी ओर बढ़ रहे तीखे भालों को कैसे मोड़ा जाए, यह एक यक्ष प्रश्न है। क्योंकि अक्षर के उपासक आज निज हित साधने में लगे हुए हैं और साहित्यिक विभेद भिन्न को उद्भिन्न कैसे बना सकता है! काव्य - जगत की विसंगतियां भी कवि के प्रहार का निमित्त बनी हैं–

काव्य जगत के महामहिम हैं, इनको जानो जी!

रहे गर्भ में पिंगल सीखा और छठी में गीत,

इनके श्रीमुख से जो निकले, होता वही पुनीत।

ईश्वर को मानो, मत मानो, इनको मानो जी!

साहित्य की सत्ता पर शालीन प्रहार! कवि के गीत पंकिल हैं पर पुनीत हैं। तुलसी के वाल्मीकि की तरह–

दोष रहित, दूषन सहित।

शैलेन्द्र शर्मा के गीत गगनचारी नहीं हैं, वे धरती से जुड़े हुए हैं और सड़क से संवाद करते हैं। संसद से लेकर सड़क तक फैले यथार्थ के अनेक स्तर उद्घाटित होते चलते हैं–

चांद - चकोर, मयूर-मयूरी के आलेख नहीं हैं,

मात्र निराशा - कुंठाओं के भी अभिलेख नहीं हैं।

सुविधा भोगी राजभवन के लिली - गुलाब नहीं हैं,

समय - सरोवर से उपजे हैं, ये नन्हें जलजात।

इसीलिए कवि नई सदी में गई सदी का गाँव ढूँढ़ रहा है। वट समीप ही पनघट का मीठा पानी तिरोहित हो गया। समय के तापमान से धरती पर उठते बगूलों से ताल की छाती दरक गई और फिर उसमें खेत और भवन उग आए। गाँव में शहर की धूल फैल गई और बच्चे किताब में नीम और महुआ खोज रहे हैं। अंजोर जी ने गांवों के शहरीकरण पर क्षोभ व्यक्त करते हुए भोजपुरी में लिखा था–

गाँव जब से शहर हो गइल, तब से दूधो जहर हो गइल।

अपराध के होठों पर जहर भरी मुस्कानें हैं और रिश्तों का विन्यास अर्थाधारित हो गया है। लोग नैतिक फिसलन का अभ्यास कर रहे हैं और हे राम जी! भरत और शत्रुघ्न आपस में नादानी कर रहे हैं। मिथकीय विपर्यय के माध्यम से आज घर-घर में भाइयों के बीच टकराव को व्यंजित किया गया है। सबकी अपनी रामकहानी है और अधिकांश लोग आत्म निर्वासित हैं। रामजियावन रामायन बांच रहे हैं, रामसमुझ टूटी खटिया पर निढाल पड़े हैं और रामभरोसे लोकतंत्र की विडम्बना का साक्षात्कार करते हुए वैकल्पिक व्यवस्था की प्रतीक्षा कर रहे हैं–

एक नहीं, अनगिनत अहिल्या मूर्ति हो गई पत्थर की,

हम बस कल्पित नायक की अगवानी कर रहे रामजी!

आकस्मिक नहीं है कि इन चलचित्रों में सभी वंचितों और औसत प्रजाजनों में राम सर्वनिष्ठ या कामन हैं जो कामना को संयमित कर आध्यात्मिक सम्बल प्रदान करते हैं। ध्यातव्य है कि कवि मानसरोवर का राही है किन्तु कैलाश उसका लक्ष्य नहीं है। नये कैलेंडर को कस्तूरी - गंध बांटते हुए बादल राग से धरती की प्यास बुझाने की अभीप्सा रखता है। जबकि जल की कीमत खून से ज्यादा होने वाली है और ग्वाले दूध में पानी मिलाना भूल जाएंगे। प्राणवायु कालाबाजारी में ही उपलब्ध होगी–

क्षीण कलेवर हुई नदी भी हारी-थकी रेत पर लेटी।

लगता जैसे सहमी-सकुची हो निर्धन विधवा की बेटी।।

भारतीय समाज का सघन लोकानुभव इस पर्यावरण-संकट में परावर्तित होता है और अन्त:करण के आयतन की नमी सोखने वाली पछुआ हवा के प्रभाव से भी कवि अभिज्ञ है। स्लाइस - माजा ने आम को अपदस्थ कर दिया है और फास्ट फूड के चक्कर में चूल्हे धूल फांक रहे हैं। गीता और रामायण पूजा घर की शोभा बन गए हैं और विज्ञापन की विश्व सुन्दरी मन के रैम्प पर टहल रही है। यह केवल नास्टेल्जिक भावबोध या अतीतानुचिन्तन नहीं है, नई सदी की क्षिप्रगतिक प्रगति का साइड इफेक्ट है। सावन के झूले और मक्का के खेत में मचान सूने पड़ गए हैं। चौपाल गुमसुम है और सम्बन्धों में बर्फ जम गई है। अपने ही अपनों से भीतर घात कर रहे हैं। गाँव के अलाव बुझे - बुझे से हैं। वन - बाग में आग लगी हुई है और मुखिया का बेटा चार शोहदों को लेकर कहीं भी फसाद बो सकता है। कभी गुलाब सिंह ने लिखा था–

नहर गाँव भर की है, पानी परधान का।

इसीलिए धान पियराए हुए हैं। वस्तुतः यह पूरे देश का रूपक है। गाँव उजड़ रहे हैं। वन उपवन में और उपवन क्यारियों में अपघटित हो गए हैं–

क्यारी - क्यारी उगे कैक्टस, कमतर हुए गुलाब,

लोक संस्कृति लगती जैसे दीमक लगी किताब।

यह बिम्ब अपने प्रतीकाशय में समय के दबाव को प्रतिफलित करता है। आज राजनीति ने घर-घर में कैक्टस बो दिए हैं और अन्धभक्तों की बाढ़ आ गई है। ह्वाट्स एप विश्वविद्यालय के ये बुद्धि हीन तन विद्यार्थी उदग्र हिंसा और असहिष्णुता के अग्रदूत बन गए हैं और राजनीति आपराधिक लूट तंत्र का गारंटेड रोजगार। यथार्थ के तीखे अनुभावात्मक दंश को निर्व्याज भाषा में निरूपित करने और यातना - दंश को एक सार्थक तनाव में विन्यस्त करने की कलात्मक चेतना ही नवगीत को वैशिष्ट्य प्रदान करती है। आज जनतांत्रिक परिवेश क्षरित हो रहा है और राजनैतिक शब्द से नैतिक पद निरस्त हो गया है। अब तो गमलों में गुलाब को सींचने की झंझट से मुक्ति मिल गई है और प्लास्टिक के निर्गंध फूलों का प्रसार हो गया है। ये मुरझाते भी नहीं हैं। किन्तु मैं तो गंधयात्री

हूँ। सर्जना की गंधलिपि पढ़ी है मैंने। मेरे गृह जनपद गाजीपुर को गुलाबों का शहर कहा जाता है और मेरी कर्मभूमि कन्नौज इत्र के उत्पादन के लिए विश्व प्रसिद्ध है। परन्तु अब तो नृसिंह जैसे जैविक द्वित्व का उत्पादन भी विज्ञान ने सम्भव कर दिया है–

धड़ तो होगा मानुष का, पर सिर होगा पशु का,
ताली बजा करेंगे स्वागत परखनली - शिशु का।

इसकी दूरसंवेदी ध्वनि भयभीत करने वाली है। हमारी पाशविक चेतना का परिहार कर हमारे भीतर मानवीय संवेदना को विकसित या रूपायित करना ही साहित्य का धर्म है। किन्तु आज धार्मिक राजनीति समाज का एक विद्रूप संस्करण रच रही है। राजनीतिक शीर्षासन को एक दूसरे स्तर पर भी लक्षित किया जा सकता है–

रमधनिया की जोरू धनिया जीत गई परधानी में,
रमधनिया की पौ - बारह है, आया ट्विस्ट कहानी में।
लम्बरदार चौधरी रहते अब उसकी अगवानी में,
तिरस्कार की जगह शहद अब उनकी बोली - बानी में।

यह प्रेमचंद के परम्परित शील का विकास है, विपर्यास नहीं। धनिया के ग्राम प्रधान हो जाने से रमधनिया रामधनी हो गया। सम्मान पूर्ण नागरिकता के लिए तरसती और विपदा की मार खाती जिन्दगी में इस अप्रत्याशित परिवर्तन की पकड़ ही कवि को क्रान्ति - द्रष्टा बनाती है। संचार - साधनों ने भी हमारे सामाजिक जीवन में क्रांति उपस्थित कर दिया है। जिस अन्तर्जाल और फेसबुक के माध्यम से हमारी रचनाएँ पल भर में हजारों लोगों तक पहुँच जाती हैं, उसी का विपर्यय रचते हुए कवि प्रेम की भयावह परिणति तक पहुँच जाता है। फेसबुक पर शीला और श्याम की दोस्ती होती है और फिर चैटिंग शुरू हो जाती है। धीरे धीरे गुटुर - गूं बढ़ती जाती है और वर्जनाएं ध्वस्त हो जाती हैं। किन्तु उड़ान भरने के पहले ही पांखी के पंख जल गए–

आनरकिलिंग श्याम के हिस्से, शीला को एकान्त,
और कोख में ही 'विप्लव' को किया गया फिर शान्त।

विप्लव शब्द तो अर्थगर्भी है ही, शीला - श्याम पदबंध में निहित अनुप्रास दोनों के प्रवृत्ति गत सादृश्य को सूचित करता है, जो अन्ततः चमत्कार की सृष्टि करता है। अनुप्रास कैसे संत्रास बनता है और प्रेम की लय प्रलय में पर्यवसित हो जाती है! यहाँ शैशव और यौवन दोनों ही संकटग्रस्त हैं। लेकिन इस "यूज एण्ड थ्रो" संस्कृति में सबसे अधिक संकटग्रस्त है वार्द्धक्य। या फिर यूँ कहें कि सभ्यता के धक्के से संस्कृति बिखर गई है–

नई सभ्यता का पछुआ ने ऐसा किया विकास,
झेल रही है बूढ़ी पीढ़ी रोज नये संत्रास।
कहाँ दवाई, खाना भी कब मिलता टाइम से,
चिपके रहते हैं खटिया पर, थूके च्युंगम से।
पेपर को पढ़ने के खातिर मैग्नीफाइंग ग्लास।

सक्रिय जीवन के पोषक बाजारवादी समय में शुभ लाभ को अतिक्रमित कर गई बूढ़ी पीढ़ी कितनी उपेक्षित है! पाश्चात्य सभ्यता और वैश्वीकरण के प्रभाव से हम छिन्नमूल होते जा रहे हैं। परम्परा और प्रगति के द्वन्द्व में वैज्ञानिक तर्क प्रज्ञा से लैस उत्तर आधुनिक पीढ़ी कह सकती है कि नव युग के नवाचार को पुरानी पीढ़ी आत्मसात नहीं कर पा रही है और समय के सत्य को वह अपने मैग्नीफाइंग ग्लास से देख रही है, निर्वसन नेत्रों से नहीं। तो यहाँ अवलोकन - बिन्दुओं का टकराव या संघात भी हो सकता है। कुल मिलाकर "राही मानसरोवर के" शैलेन्द्र शर्मा का उत्कृष्ट नवगीत - संचयन है और इस मानसरोवर के जल - दर्पण में हमारे वैश्विक समय की थाह मिलती है और हमारा दिक् काल सम्पूर्णता में परावर्तित होता है। कन्नौज, **मो. 9839611435**

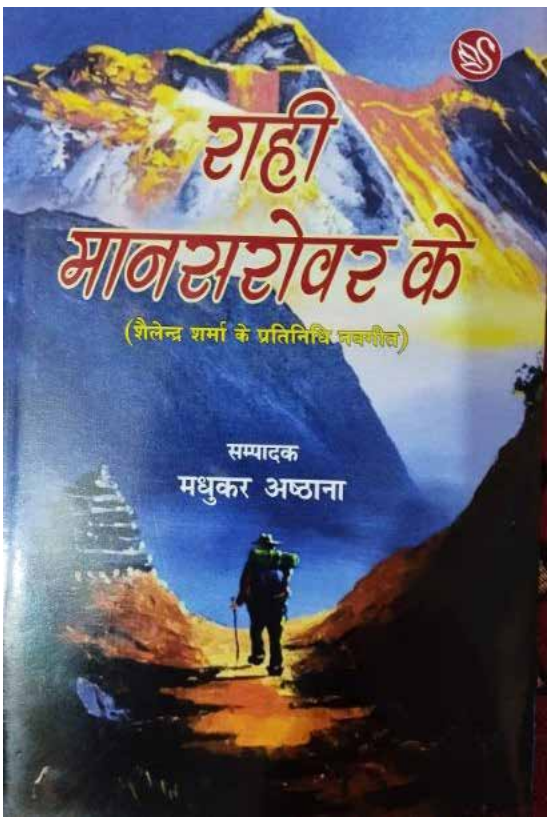

सकारात्मक दृष्टि और सार्थक बोध...

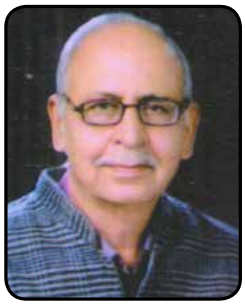

डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

साधुवाद, ध्वंस, शिविरबन्दी, शब्दाडम्बर, बड़बोलेपन और विचारधारा-मोह वर्तमान हिन्दी आलोचना की सुविदित रूढ़ियां हैं। इनका अतिक्रमण करते हुए नई शती के काव्य की वस्तुनिष्ठ परख करने वालों में अजित कुमार राय सहज ही ध्यान आकर्षित करते हैं। "नई सदी की हिन्दी कविता का दृष्टि - बोध" में उनके काव्यालोचन का प्रस्थान - बिन्दु यह अवधारणा है कि कविता जीवन और जगत की आलोचना होने के साथ - साथ आत्मसत्य की लयाभिव्यक्ति भी है। उन्होंने कृतज्ञ भाव से स्वीकार किया है कि उन्हें डॉ. नामवर सिंह, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, डॉ. परमानंद श्रीवास्तव, डॉ0 ओम निश्चल, प्रोफेसर अशोक वाजपेयी, डॉ. अजय तिवारी आदि से आलोचना- दृष्टि मिली है। और वे एक व्यापक और समावेशी दृष्टि से कविता को देखने - परखने का प्रयास कर सके हैं।

नई शती में कई पीढ़ियों के कवि सक्रिय रहे हैं। श्री राय ने जहाँ एक ओर कुंवरनारायण, नरेश मेहता, केदारनाथ सिंह, अशोक वाजपेयी आदि प्रतिष्ठित कवियों पर गम्भीरता से लिखा है तो अरुण कमल, राजेश जोशी, मंगलेश डबराल, उदय प्रकाश, ज्ञानेन्द्रपति आदि वरिष्ठ कवियों का नई शती में रचित काव्य भी उनके निकष पर है। नामवर जी और प्रभाकर श्रोत्रिय की समीक्षा - कृतियों के अनुशीलन - क्रम में मुक्तिबोध, अज्ञेय, श्रीकांत वर्मा आदि ही नहीं, तुलसी, कबीर, प्रसाद, निराला आदि की चर्चा भी प्रसंग वश हुई है। जाहिर है श्री राय का काव्य - विवेक सीमित नहीं है। उसका पाट चौड़ा है। पता नहीं, कैसे शती - पुरुष रामदरश मिश्र उनकी दृष्टि - परिधि से बाहर रह गए हैं। जबकि उन्हें 'आग की हंसी' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार पिछले वर्ष तथा प्रतिष्ठित 'सरस्वती सम्मान भी मिला। अस्तु, इस कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष नई पौध की सर्जनात्मक उपलब्धियों और सम्भावनाओं को रेखांकित करना है। नीरज नीर, प्रांजल राय, विजेन्द्र सिंह, विवेक चतुर्वेदी, सुशोभित सक्तावत, पल्लवी त्रिवेदी, रंजीता सिंह, रश्मि भारद्वाज आदि दर्जनों रचनाकारों पर सम्भवतः पहली बार इतना विशद और गम्भीर विवेचन सामने आया है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य है कि छन्दोबद्ध कविता के प्रति आलोचक अनुदार नहीं है। "नवगीत का स्थापत्य" शीर्षक आलेख इसका प्रमाण है।

अजित कुमार राय

कविताओं के मर्म, सौंदर्य और शक्ति की पहचान के क्रम में अजित कुमार राय आस्वादक और विश्लेषक - दोनों रूपों में तालमेल बिठाते हैं। इस जुगलबंदी के फलस्वरूप आकर्षक और तार्किक नयी स्थापनाएँ उपलब्ध होती हैं। महाप्रस्थान के संदर्भ में उनका आकलन है कि नरेश मेहता, ''अपने भीतर मनुष्यता का सृजन करते हैं, देवत्व का भी, अतिक्रमण करने का प्रयास करते हैं।" " कुँवर नारायण का काव्य - सत्य सामाजिक संघर्षों के बीच जीवन - सौंदर्य की तलाश करता है।" " केदारनाथ सिंह के लेखन की धुरी गंवई मन है, जहाँ वक्तव्य नहीं, बतकहियों का संसार है। " " अशोक बाजपेयी की कविता को ' स्मृतियों का घर और अंतर्ध्वनियों का पड़ोस ' मानना और समग्र जीवन - बोध के प्रज्ञावान वैतालिक " घोषित करना भी प्रमाणपुष्ट स्थापनाएँ हैं। श्री राय ज्ञानेंद्रपति को अरुण कमल से बड़ा कवि मानते हैं, उन्हें लगता है कि मनुष्य के अंतर्जीवन का यथार्थ कभी - कभी अरुण कमल की पकड़ से छूट जाता है। जाहिर है यह समीक्षात्मक विवेक न तो निर्गुणपंथी है, न एक आयामी। कई कवियों की शक्ति के साथ उनकी सीमा का उद्घाटन आश्वस्त करता है। दिनेश कुमार शुक्ल को जहाँ, 'सकर्मक ज्ञानात्मक संवेदन' को कविता की थाती बनाने का श्रेय दिया गया है। वहीं यह भी अंगुलिनिर्देश है कि कविताओं में आद्योपांत ' भाषिक समरसता और अन्विति " खंडित हुई है।

कवियों के साथ- साथ नयी सदी की कविता पर कुछ स्वतंत्र टिप्पणियाँ भी मौलिक और अर्थपूर्ण हैं। विद्वान आलोचक को लगता है - ' कविता पर आज ग्रहण लगा हुआ है। अन्य विधाओं की पंक्ति में कविता 'कोष्ठक' में चली गयी है और कविता में जो कुछ बचा है, वह कविता का अर्थात् बचा है।' अन्यत्र एक तीखी टिप्पणी है- ' भाषा के किसान आज आत्महत्या को प्रस्तुत हैं और भाषा के व्यापारी बहुमंजिले मल्टीकॉम्प्लेक्सेस में वातानुकूलित

सेज पर सो रहे हैं'। एक विडम्बना के संदर्भ में कविता के हस्तक्षेप की शक्ति इस रुप में है-" यह ऐसा दौर है जब जीते जागते आदमी गायब कर दिये जाते हैं। यदि कविता न होती तो शायद वे स्मृतियों से भी पोंछ दिये जाते। " ये सभी मंतव्य विचारोत्तेजक हैं, संवाद के लिए आमंत्रित करने वाले हैं। यह अवश्य है कि ' सांस्कृतिक आत्मविश्वास के पुनर्वास का कलज्ञ- उद्यम' ' ऋतम्भरा प्रज्ञा की परा ब्रह्माण्डता, 'वैचारिक तिग्मिता' जैसे पद सामान्य पाठक ही नहीं, सुपठित पाठक के भी भाषा-ज्ञान की परीक्षा ले लेते हैं। समग्रत: दृष्टिबोध पारदर्शी और सहजग्राह्य है।

संदर्भ - नयी सदी की हिन्दी कविता का दृष्टिबोध

लेखक- अजित कुमार राय

प्रकाशन- बिम्ब प्रतिबिम्ब प्रकाशन फगवाड़ा (पंजाब),

प्रथम संस्करण 2023

समीक्षक - वेदप्रकाश अमिताभ, अलीगढ,

मो. 8037004113

साहित्य अकादमी पुरस्कार: एक उत्खनन

अजित कुमार राय

गगन गिल को इस साल साहित्य अकादमी पुरस्कार दिए जाने की घोषणा हुई है। अनामिका, गगन गिल, नीलेश रघुवंशी, अनीता वर्मा, बाबुषा कोहली और पल्लवी त्रिवेदी की कविताएँ मुझे अच्छी लगती हैं और ये समकालीन नारी-काव्य के प्रतिनिधि स्वर कहे जा सकते हैं।

डॉ. अजय तिवारी कथा-साहित्य, आलोचना और कथेतर गद्य के लिए भी साहित्य अकादमी पुरस्कार दिए जाने की अनुशंसा करते हैं। कुछ लोग व्यंग्य के लिए भी पुरस्कार दिए जाने की मांग कर रहे हैं तो कुछ लोग हिन्दी की व्यापकता को देखते हुए चार-पांच पुरस्कार प्रति वर्ष दिए जाने का प्रश्न उठा रहे हैं, धनराशि भले ही कम कर दी जाए। तो कुछ प्रतिरोध धर्मी लेखक पुरस्कार-प्रदायी संस्थाओं को वर्चस्व के प्रतिष्ठान की तरह देखते हैं तो कुछ लोग पुरस्कार मात्र की विश्वसनीयता पर सवाल उठाते हुए उसे खारिज करते हैं। गौरतलब है कि एक समय साहित्य अकादमी पुरस्कार लौटा कर दुबारा प्रसिद्धि पाने का फैशन भी चल गया था। यूँ तो बहुत पहले आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने पुरस्कारों की विश्वसनीयता को प्रश्नांकित किया था और ज्यॉ पाल सार्त्र ने नोबेल पुरस्कार ठोकर मारी थी। आज प्राय: पुरस्कार पाने के लिए कितने जोड़-तोड़ करने पड़ते हैं और अपने चहेतों को उपकृत करने के लिए पुरस्कार दिए जाने की बात किसी से छिपी नहीं है। सबसे बड़ी बात यह अखरती है कि लोग पुरस्कार पाने के लिए खुद आवेदन करते हैं। फिर भी कुछ जेनुइन लोगों को पुरस्कार मिलते ही हैं। इसलिए यह एक जटिल विषय है और इस पर कोई सरलीकृत सपाट उत्तर नहीं दिया जा सकता। यदि सही या समीचीन सर्जक का ईमानदारी और पारदर्शिता के साथ चयन किया जाता है तो सृजन को प्रोत्साहन मिलता है।

सर्जनात्मक आलोचना आज के कविता-लेखन से काफी आगे बढ़ गई है और वह सृजन के रिक्त स्थानों को भी भरती है। डॉ. कविताएँ के इस मत से मैं सहमत हूँ। आज के उत्तर आधुनिक वैश्विक समय को भेदने में आलोचना कविता से अधिक सक्षम है। विजय कुमार, जयप्रकाश, ओम निश्चल और अजय तिवारी की आलोचना आज की कविता से अधिक प्रबुद्ध है। स्वयं कुमार अग्रवाल, बद्रीनारायण और गगन गिल का गद्यात्मक चिन्तन उनकी कविताओं से अधिक उत्कृष्ट है। जबकि होना चाहिए ठीक इसका उल्टा। यह भी एक युग-विपर्यय है। कविता अधिक अर्थ-सघन होती है। आज आलोचना पूरक भूमिका में भी है। किन्तु विजय कुमार और मंगलेश डबराल की चिन्ता वाजिब है कि आज आलोचना नव सृजनशीलता के प्रति विमुख या उदासीन है। उसके सामंजस्य-बोध के अभाव के कारण आज अधिकांश कवि स्वयंभू मुद्रा में प्रकट हैं। यह एक अराजकता को स्थापित है। आलोचकों के अखंड कीर्तन या उच्चाटन अनुष्ठान के कारण बहुत से लेखक आलोचना की आवश्यकता को ही नकार देते हैं। कभी कमलेश्वर और नामवर सिंह आमने-सामने आ गए थे। कमलेश्वर कहते हैं कि आज आलोचना का प्राइमरी पैमाना भी नहीं है। तो नामवर सिंह कहते हैं कि खूब अच्छी आलोचना लिखी जा रही है। गद्य भी एक विडम्बना है कि कविता में आम आदमी की भाषा के हिमायती आलोचना बहुत उदात्त और अभिजात भाषा में लिखते हैं।

आज कहानी में कहानीपन गायब होता जा रहा है। अर्थात् अमृतलाल नागर आदि की किस्सागोई रूपबंध से वाग्भीभूत होती जा रही है। विमर्श मूलक सृजन का अर्थ है कि मैल बैल के लिए सोना। प्रतिबद्ध लेखन रचनात्मक चिन्तन को बाधित करता है। अज्ञेयजी कहते हैं कि ज्ञान कविता कोई नई अवधारणा नहीं बनाती। बल्कि वह विचार और यथार्थ के ठीक बीचोबीच बैठे किसी विरोधाभास को उठाती है। वह अतीत नहीं, वर्तमान के खण्डहरों से कच्चा माल उठाती है। फ्रेम में सोचना यथास्थितिवाद का प्रगतिशील संस्करण है। फिर प्रश्न यह उठता है कि नवगीतकार को पुरस्कार क्यों नहीं मिलना चाहिए? आज की गद्यछाप सिंथेटिक कविता से तो कई नवगीतकार बेहतर लिखते रहे हैं। स्वयं केदारनाथ सिंह, रामदरश मिश्र और अरुण कमल ने भी उत्कृष्ट गीत लिखे हैं। आज गजल और व्यंग्य विधा का भी विस्फोट हुआ है और दोहे की धी इयत्ता बढ़ गई है। बहरहाल गगन गिल जी को हार्दिक बधाई।

कन्नौज

अजित कुमार राय

पुत्र : श्री दीनानाथ राय
जन्म तिथि : 17/10/1967
काव्य - कृतियाँ : आस्था अभी शेष है, रथ के धूल भरे पांव
संपादित : सर्जना की गंध लिपि आलोचना, नया ज्ञानोदय, वागर्थ, हंस, अक्षरा, साक्षात्कार, साहित्य अमृत, वीणा, पाखी, परिकथा, कथाक्रम, दोआबा, आधुनिक साहित्य, साहित्य भारती, शब्दिता, सम्मेलन पत्रिका (प्रयागराज), समीक्षा, दस्तावेज, नूतन कहानियाँ, निकट, लहक, अक्षर पर्व, अभिनव इमरोज आदि पत्रिकाओं तथा जनसंदेश टाइम्स, आज, सहारा समय, दैनिक जागरण आदि समाचार - पत्रों में रचनाएँ प्रकाशित।
अनेक संकलनों में निबन्ध, कविताएँ और आलोचनाएँ प्रकाशित।
पूर्व प्रधानाचार्य : सुभाष इण्टर कालेज, नेरा, कन्नौज
पता : विमर्श, विष्णु पुरम् कालोनी, नयी कचहरी रोड, सरायमीरा, कन्नौज (उत्तर प्रदेश) पिन 209727
मो. : 9839611435

विम्ब-प्रतिविम्ब पब्लिकेशन्स
रजि. कार्यालय : विम्ब-प्रतिविम्ब सृजन संस्थान, शॉप नं. 4, लवली ऑटो के पास, ट्रैक ऑन कोरियर, फगवाड़ा (पंजाब)
मोबा.: 8528833317, 9877545648

नई सदी की हिन्दी कविता का दृष्टि-बोध - अजित कुमार राय

नई सदी की

हिन्दी कविता का दृष्टि-बोध

अजित कुमार राय

कानपुर विश्वविद्यालय में बोलते हुए

'निकट' के संपादक श्री कृष्ण बिहारी त्रिपाठी के साथ

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयागराज में सचिव द्वारा सम्मानित होते हुए...

पूर्वांचल विश्वविद्यालय के कुलपति को अपनी प्रथम काव्य - कृति " आस्था अभी शेष है" भेंट करते हुए

सोम ठाकुर मेरी संपादित पुस्तक "सर्जना की गंध लिपि" का लोकार्पण करते हुए...

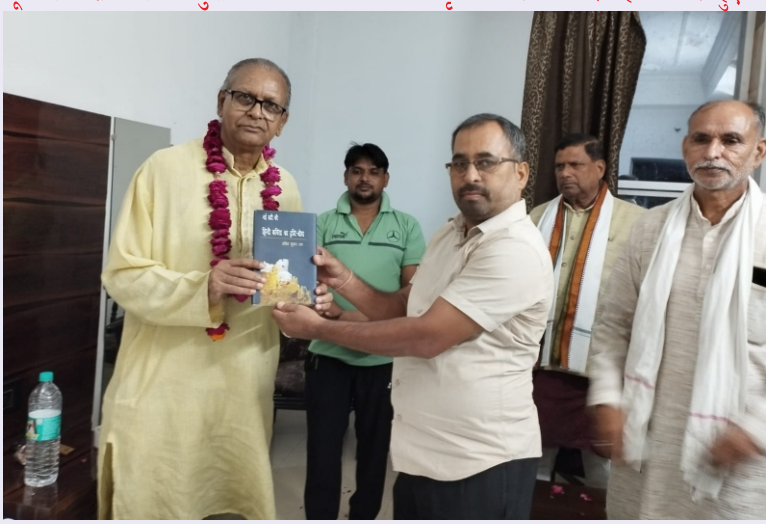

उद्भ्रांत जी के साथ

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक देवेन्द्र कुमार बहल द्वारा डेकोरपैक इंडिया प्रा. लि., 291डी, सेक्टर 6, आई.एम.टी., मानेसर, गुड़गाँव (हरियाणा) से मुद्रित, बी-3/3223, वसंतकुंज, नई दिल्ली 110070 से प्रकाशित किया । -संपादक : देवेन्द्र कुमार बहल

कन्नौज - रत्न अवॉर्ड से सम्मानित होते हुए...

कश्मीर के उप राज्यपाल माननीय श्री मनोज सिन्हा जी को पुस्तक भेंट करते हुए...